CHAPTER 29

HINDI

Doctoral Theses

01. अंजना
जनवादी कहानी: विचारधारात्मक फ्रेम और भारतीय यथार्थ ।
निर्देशिक : प्रो. अल्पना मिश्रा
Th 29042

सारांश

शोध-सार मेरा शोध-विषय "जनवादी कहानी : विचारधारात्मक फ्रेम और भारतीय यथार्थ" है। शोध-प्रबंध में जनवादी कहानी की विचारधारा और उसे वस्तुगत फ्रेम के साथ भारतीय यथार्थ को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है। अपने शोधकार्य को मैंने चार अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय जनवाद से संबंधित है। इस अध्याय में 'जनवाद' के स्वरूप को परिभाषित करते हुए उसकी अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है तथा हिंदी कहानी के विकास और जनवाद की परंपरा का भी विश्लेषण करते हुए जनवादी विचारधारा के प्रारूप को समझते हुए सामंतवादी मानसिकता और जनवाद के साम्य तथा वैषम्य पर गहराई से विचार किया गया है। शोध का दूसरा अध्याय जनवादी कहानी में वस्तुगत फ्रेम और भारतीय यथार्थ के विविध रूपों से संबंधित है। जिसके अंतर्गत जनवादी विचारधारा के विविध आयामों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जिसमें स्त्री, दलित और आदिवासी स्वर भी मुख्य रूप से उठाए गए हैं। साथ ही आदर्श और यथार्थ की विभिन्न स्थितियों और विसंगतियों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। तीसरे अध्याय में जनवादी कहानी में विचारधारात्मक अंतर्विरोध को जानने के लिए समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष और जाति-व्यवस्था की परतों को खोलने का प्रयास करते हुए न्याय और समानता के स्वर में स्त्री यथार्थ के पक्ष को उद्‌घाटित करने कोशिश की गई है। साथ ही वर्चस्ववादी मानसिकता को स्पष्ट रूप से उद्‌घाटित करते हुए यथार्थ और विचारधारा दोनों के आग्रह का भी अन्वेषण किया गया है। चौथा अध्याय जनवादी वैचारिकी में भाषा और रूप की चुनौतियों से संबंधित है। इस अध्याय में भाषा की भीतरी अर्थ वैषम्य को स्पष्ट करते हुए जनवादी कहानी की कथाभूमि के परिप्रेक्ष्य में शिल्पगत प्रयोगों के स्वरूप को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है। अतः इन समस्त आधारों पर मैंने अपने शोधकार्य में जनवादी कहानी की विचारधारा और भारतीय यथार्थ को समग्रता से व्याख्यायित एवं विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

विषय सूची

1. जनवाद की अवधारणा और हिन्दी कहानी में जनवाद की उपस्थिति 2. जनवादी कहानी में वस्तुगत फ्रेम और भारतीय यथार्थ के विविध रूप 3. जनवादी कहानी में विचाारधारात्मक अंतर्विरोध 4. जनवादी वैचारिकी में भाषा और रूप की चुनौतियाँ। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

02. अजय कुमार

राधामोहन गोकुल के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना ।

निर्देशक : डॉ. राजेश शर्मा

Th 29298

सारांश

उन्नीसवीं सदी में 'राष्ट्रीय-चेतना' की भावना को समाज के हर स्तर पर व्यापक रूप से लक्षित किया जा सकता है। विद्वानों ने समाज में व्याप्त इस राष्ट्रीय-चेतना को दो वर्गों में विभाजित किया है पहला बाह्य समस्याएँ, जिसमें राजनीतिक और प्रशासनिक गुलामी दूसरी आंतरिक समस्याएँ जिसमें, छुआछूत व जातिगत भेदभाव, स्त्री, दलित व अछूतों के सवाल। राधामोहन गोकुल जी ने इसी सक्रियता और राष्ट्र-हित में पुरजोर लेखन- जिसके माध्यम से उन्होंने समाज के हर उपेक्षित व वंचित वर्ग को जागरूक करने और उनके हक की मुखालफत की है- में उनके 'राष्ट्रीय-चेतना' के स्वरूप और विशेषताओं को समझने के लिए इस शोध-प्रबंधन-राधामोहन गोकुल के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना को छः अध्यायों में विभक्त कर के देखा गया है। पहला अध्याय- अध्याय में विभाजित करके गोकुल जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है। दूसरा अध्याय- अध्याय में विभाजित करके उनके राष्ट्रीय-चेतना संबंधी विचारों में राष्ट्रीय-चेतना का विवेचन और विश्लेषण किया गया है। तृतीय अध्याय- उनके लेखन के आधार पर उनके विचारों में व्याप्त राष्ट्रीय-चेतना के स्वर को तत्कालीन भारतीय आंदोलन और समाज सुधार की पृष्ठभूमि में देखने का प्रयास किया गया है, जिसमें राष्ट्रीय चेतना का तीव्र स्वर दिखाई पड़ता है। चौथा अध्याय- राधामोहन गोकुल केवल एक लेखक के तौर पर नहीं, बल्कि एक जन, नायक, समाज सुधारक, क्रान्तिकारी और जनता को चेतनशील व जागरूक बनाने वाले साहित्यकार है। उनके प्रगतिशील आयामों को समझने के लिए दो भागों में विभाजित किया गया है। पाँचवा अध्याय- सामाजिक मुक्ति का प्रश्न है। जिसमें स्त्री, दलित, वंचित और उनकी शिक्षा और उनके राष्ट्रीय-चेतना सम्बन्धी सवाल प्रमुख हैं। छठवाँ अध्याय- गोकुल जी के लेखन के शिल्प अर्थात् कहन शैली का विश्लेषण किया गया है। साथ ही इस बात की छानबीन की गई है कि उनकी भाषा भारतीय स्त्री, वंचित जनता अथवा आम जनता के अनुकूल थी या नहीं।

विषय सूची

1. राधामोहन गोकुल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 2. राष्ट्रीय चेतना के विविध पक्ष और हिन्दी 3. राधामोहन गोकुल के लेखन में राष्ट्रीय–चेतना का स्वर 4. राधामोहन गोकुल के साहित्य में प्रगतिशील आयाम 5. सामाजिक मुक्ति का प्रश्न और राधा मोहन गोकुल। 6. राधा मोहन गोकुल के साहित्य में शिल्प पक्ष। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

03. अपूर्वा

प्रवासी भारतीय कथा साहित्य में मध्यवर्गीय चेतना (ब्रिटेन के विशेष संदर्भ में) ।

निर्देशिका : प्रो. राजरानी शर्मा एवं प्रो. पूरनचंद टंडन

Th 29040

सारांश

साहित्य एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा साहित्यकार अपने उन विचारों को यथार्थ, सशक्त एवं सजीव रूपों में कागज पर उकेरता है। जिसको उसने स्वयं भोगा है अथवा समाज को भोगते हुए देखा है। प्रवास शब्द 'वस' धातु में 'प्र' उपसर्ग लगाने से बना है। प्रवास का अर्थ है – अपने निज स्थान

को छोड़कर दूसरी जगह वास करना। अपने निज स्थान या देश को छोड़कर अन्य देश में जाने वाला 'प्रवासी' कहलाता है। विदेश में प्रवासियों द्वारा लिखे जा रहे साहित्य को 'प्रवासी साहित्य' कहा जाता है। प्रत्येक देश के साहित्य की भिन्नता का आधार परिवेश, जीवन-मूल्य, मानसिकता और सामाजिक सरोकारों आदि से होता है। प्रवासी साहित्य की दो धाराएँ हैं, प्रथम, मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, गयाना आदि देशों में भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों के संतानों द्वारा रचित, गिरमिटिया प्रवासी साहित्य। दूसरा, जिनमें अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा, फ्रांस आदि देशों में स्वेच्छा से गए प्रवासी भारतीयों द्वारा रचित प्रवासी साहित्य। हिंदी भाषा और साहित्य अब एक वैश्विक रूप ले चुका है। आज हिंदी, प्रयोक्ता के आधार पर विश्व में तीसरे स्थान पर है। हिंदी का प्रवासी साहित्य भारतेत्तर देशों को भारत से जोड़ने का एक सेतु बनता है, जिसके मूल में प्रवासी भारतीयों का भाषा प्रेम, सांस्कृतिक प्रेम के साथ उसकी आत्मीय संलग्नता, सहभागिता एवं सहयोग अटूट रूप से संबद्ध रहता है। प्रवासी लेखकों द्वारा रचा गया, हिंदी साहित्य विदेशों में भारतीयता एवं भारतीय सांस्कृतिक चेतना का संवाहक बनता है। प्रवास में रहकर जो साहित्य सृजन किया जा रहा है, उसमें नए संवेदन, नए सांस्कृतिक द्वंद्व, नए पृष्ठभूमि, नवीन समस्याओं से हिंदी का पाठक वर्ग रू-ब-रू हो रहा है। ब्रिटेन में रचित प्रवासी भारतीयों के कथा साहित्य में व्यक्त मध्यवर्ग के प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का विवेचन, विश्लेषण, तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। मध्यवर्ग उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच का वर्ग है। उसका अपना अलग अस्तित्व है। उसकी अपनी रुचियाँ-अभिरुचियाँ, मानसिकता, शिष्टाचार, रीति-रिवाज़ और आचार-विचार है। प्रवास में जीवन-यापन सरल नहीं होता है, परंतु व्यक्ति अपनी महत्वाकांक्षाओं, बेहतर जीवन स्तर आदि के कारण आज व्यापक स्तर पर प्रवास का चयन कर रहा है। कई बार विदेशी जीवन-मूल्यों के साथ जीवन-यापन करना कठिन एवं संघर्षपूर्ण होता है। व्यक्ति का अपनी संस्कृति से गहरा संबंध होता है, संस्कृति का उसके जीवन पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव होता है। जब वह विदेश में जाता है और वहाँ के मूल्यों से टकराता है, तो उसे न जाने कितने संघर्षों, कठिनाइयों, अंतर्द्वंद्वो से गुजरता पड़ता है। मध्यवर्ग अपनी प्रस्थिति को बदलने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। मध्यवर्ग, विश्व की विभिन्न जटिल सामाजिक संरचनाओं में इसका अस्तित्व है और इसकी समस्याओं का भी। मध्यवर्ग के इन सभी स्थितियों एवं द्वंद्व का यथा तथ्य रूप से चित्रण कर उन्हें पाठक के सम्मुख विश्लेषण करना भी इस शोध विषय का एक आवश्यक अंग है। हमारे साहित्य में प्रवासी लेखकों की बात तो बहुत होती है पर उनके साहित्य की मीमांसा नहीं हुई। उनके मान्यताओं, सरोकारों, संवेदनाओं को समझने के गंभीर प्रयास कम हुए हैं। प्रवासी भारतीयों के हिंदी भाषा एवं साहित्य को विदेशों में प्रतिष्ठित करने के महत्त्वपूर्ण योगदान को भी प्रकाश में लाया गया है।

विषय सूची

1. प्रवासी हिन्दी साहित्य : अवधारणा एवं स्वरूप 2. मध्यवर्ग एवं उसका स्वरूप 3. वैश्विक स्तर पर प्रवासी कथाकार 4. प्रतिनिधि प्रवासी भारतीय कथाकार और उनका कथा साहित्य 5. ब्रिटेन के प्रवासी भारतीय कथा साहित्य में मध्यवर्गीय चेतना। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ।

04. अमन कुमार

साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल में चेतना के विविध आयाम (दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, ज़हीर कुरैशी, कुँअर बेचैन, शरद मिश्र के संदर्भ में) ।

निर्देशिका : डॉ. राकेश कुमार सिंह

Th 29389

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध का मुख्य उद्देश्य साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल में व्याप्त चेतना के विविध आयामों का आलोचनात्मक और समग्र अनुशीलन करना है। साठ के दशक के बाद हिंदी ग़ज़ल ने अपनी पारंपरिक रूमानी छवि से बाहर निकलकर आम आदमी की पीड़ा, सामाजिक विसंगतियों, राजनीतिक मोहभंग और कठोर यथार्थवाद को अपना स्वर बनाया। इस शोध में विशेष रूप से पाँच प्रमुख ग़ज़लकारों—दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, ज़हीर कुरैशी, कुँअर बेचैन और शरद मिश्र की रचनाओं को अध्ययन का आधार बनाया गया है। दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़ल को नई राजनीतिक और सामाजिक चेतना दी, वहीं अदम गोंडवी ने इसे गाँव की चौपालों, हाशिए के समाज और व्यवस्था के खिलाफ जन-विद्रोह की सशक्त आवाज़ बनाया। ज़हीर कुरैशी और कुँअर बेचैन ने अपनी ग़ज़लों में मानवीय संवेदनाओं, दार्शनिक गहराई और समकालीन यथार्थ का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही, शरद मिश्र की ग़ज़लों में आधुनिक जीवन बोध और बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की गहरी पड़ताल मिलती है। यह शोध इस तथ्य को उद्‌घाटित करता है कि साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल महज़ एक काव्य विधा नहीं, बल्कि जन-चेतना और प्रतिरोध का एक सशक्त वैचारिक माध्यम है। इन पाँचों रचनाकारों के संदर्भ में यह अध्ययन हिंदी साहित्य में ग़ज़ल की विकास-यात्रा, उसकी वैचारिक समृद्धि और वर्तमान समय में उसकी प्रासंगिकता को समझने का एक गंभीर प्रयास है।

विषय सूची

1. चेतना का अर्थ एवं स्वरूप 2. हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा 3. साठोत्तरी हिन्दी गऋजऋल में सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना 4. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल में सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, धार्मिक एवं अन्याय चेतना 5. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल की भाषिक चेतना। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

05. अर्चना कुमारी
हिंदी दलित स्त्री लेखन में जाति और पितृसत्ता के अंतर्संबंध के स्वरूप का अध्ययन ।
निर्देशिका : डॉ. नीलम कुमारी
Th 29299

सारांश

शोध सार प्रस्तुत शोध प्रबंध में, हिंदी दलित स्त्री लेखन में जाति और पितृसत्ता के अंतर्संबंध के स्वरूप का गहन और बहुआयामी अध्ययन किया गया है। हिंदी दलित स्त्री लेखन की विभिन्न विधाओं जैसे— आत्मकथा, कहानी, कविता, उपन्यास एवं आलोचना इत्यादि के व्यापक विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ है कि दलित स्त्री के अनुभव केवल 'दलित अनुभव' और 'स्त्री अनुभव' का योग नहीं हैं, बल्कि यह एक विशेष और अद्वितीय अनुभव है, जो इन दोनों के अंतर्संबंध से निर्मित होता है। दलित स्त्री लेखन यह स्वष्ट करता है कि भारतीय समाज व्यवस्था में लैंगिक उत्पीड़न हमेशा जातीय संदर्भ में घटित होता तथा जातीय शोषण में लैंगिक आयाम अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। दलित स्त्री लेखिकाओं के साहित्य में यह द्वैत निरंतर उपस्थित है। प्रस्तुत शोध प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक अध्याय को विषय की स्पष्टता हेतु विभिन्न इकाइयों में विभाजित किया गया है। अध्याय के वर्गीकरण में विषय की गहनता और स्वरूप की स्पष्टता को आधार बनाया गया है। प्रथम अध्याय से दलित साहित्य की अवधारणा, उसके वैचारिक आधार, स्वरूप एवं महत्त्व को स्पष्ट करता है। द्वितीय अध्याय में दलित स्त्री लेखिकाओं द्वारा जाति को एक जीवित यथार्थ के रूप में उद्‌घाटित किया गया है। तृतीय अध्याय पितृसत्ता की अवधारणा एवं जेंडर

की संरचना तथा मुख्यधारा और दलित स्त्री लेखन में पितृसत्ता के स्वरूप में गहराई से मौजूद अंतर का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय में जाति एवं पितृसत्ता के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आधारों का विश्लेषण किया गया है। पंचम अध्याय दलित साहित्य में दलित स्त्रियों के विशिष्ट एवं अनिवार्य योगदान को दर्शाता है। दलित स्त्री लेखन में जाति और पितृसत्ता के अंतर्संबंध से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में जातिगत ढाँचा और पितृसत्तात्मक व्यवस्था आपस में मिलकर दलित स्त्रियों पर शोषण और दमन की दोहरी-तिहरी परतें बनाते हैं।

विषय सूची

1. दलित साहित्य की अवधारणा और दलित 2. दलित स्त्री लेखन और जाति 3. दलित स्त्री लेखन में पितृसत्ता 4. दलित स्त्री लेखन में जाति और पितृसत्ता का अंतर्सबंध 5. दलित साहित्य और दलित स्त्री लेखन का योगदान । उपसंहार । सन्दर्भ ग्रन्थ ।

06. अमित कुमार

जय प्रकाश कर्दम के कथा साहित्य में सांस्कृतिक और लोकतांत्रिक मूल्यों का वस्तुनिष्ठ अध्ययन ।

निर्देशिक : प्रो. नामदेव

Th 29390

सारंश

यह शोध जयप्रकाश कर्दम के कथा-साहित्य का परिक्षण करता है, जो दलित विमर्श और भारतीय लोकतंत्र के सांस्कृतिक पुनरावलोकन दोनों का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इस शोध की केंद्रीय परिकल्पना यह है कि कर्दम का साहित्य लोकतंत्र को केवल राजनीतिक तंत्र नहीं, बल्कि मानवता के नैतिक दर्शन के रूप में प्रस्तुत करता है जो तब तक अधूरा रहता है जब तक समाज में सांस्कृतिक समानता, शैक्षिक अवसर और आत्मसम्मान की चेतना स्थापित नहीं हो जाती। यह अध्ययन कर्दम के साहित्य में लोकतांत्रिक मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान के अंतर्संबंध की जांच करता है, यह तर्क देते हुए कि दलित साहित्य में लोकतांत्रिक आदर्श वैचारिक निर्माण नहीं हैं, बल्कि जीवंत संघर्ष और सांस्कृतिक प्रतिरोध के रूप में प्रकट होते हैं। यह शोध इस बात की भी खोज करता है कि संवैधानिक लोकतांत्रिक प्रावधानों ने दलित समुदायों को वास्तविक समानता और सम्मान प्राप्त करने में किस हद तक सक्षम बनाया है। शोध के प्रमुख प्रश्न दलित पात्रों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में लोकतांत्रिक चेतना के प्रभाव से आए परिवर्तनों को संबोधित करते हैं, तथा स्त्रियों, मजदूरों और पिछड़े वर्गों जैसे अन्य समूहों की कर्दम के लोकतांत्रिक विमर्श में समावेशिता का अन्वेषण करते हैं।इस शोध में ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक और गुणात्मक-मात्रात्मक पद्धतियों का उपयोग किया गया है। मुख्य शब्द: साहित्य, लोकतांत्रिक मूल्य, जयप्रकाश कर्दम, सांस्कृतिक लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, संवैधानिक अधिकार ।

विषय सूची

1. जयप्रकाश कर्दम : जीवन परिचय अज्ञैर साहित्यिक योगदान 2. जयप्रकाश कर्दम के कथा साहित्य में लोकतांचिक मूल्यों का विवेचन 3. जयप्रकाश कर्दम के कथा साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों का विश्लेषण 4. जयप्रकाश कर्दम के कथा साहित्य में अभिव्यक्त दलित जीवन 5. जयप्रकाश कर्दम के कथा साहित्य में भाषा और शिल्प का अध्ययन 6. उपसंहार, परिशिष्ट। साक्षात्कार : जय प्रकाश कर्दम। सन्दर्भग्रन्थ सूची।

07. इन्दु कुमारी

समकालीन हिंदी दलित कवियों के काव्य में अम्बेडकरवादी चेतना (विशेष संदर्भ : जयप्रकाश कर्दम, मलखान सिंह, सुशीला टाकभौरे, मोहनलाल रवि और रजनी तिलक 2013–2023)।

निर्देशिका : प्रो. पूनम सिंह

Th 29313

सारंश

यह शोध 2013 से 2023 तक की समकालीन हिंदी दलित कविताओं में निहित अम्बेकरवादी चेतना की प्रकृति, स्वरूप और उसके सामाजिक प्रभाव को समझने का प्रयास करता है। अध्ययन में प्रमुख दलित कवि— जयप्रकाश कर्दम, मलखान सिंह, सुशीला टाकभौरे, मोहनलाल रवि और रजनी तिलक— की कविताओं का विश्लेषण किया गया है। शोध का मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि इन कवियों की रचनाएँ किस प्रकार डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित समानता, न्याय, स्वाभिमान, शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन की विचारधारा को आगे बढ़ाती हैं। विषय-वस्तु विश्लेषण पद्धति के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि उक्त कवियों की कविता दलित अनुभव, शोषण-प्रतिरोध, स्त्री-सशक्तिकरण, सामाजिक बराबरी और आत्मसम्मान को केन्द्रीय स्वर के रूप में प्रस्तुत करती है। उनकी काव्य-दृष्टि में अम्बेडकरवादी चिंतन न केवल प्रेरणास्रोत है बल्कि एक सक्रिय सामाजिक संघर्ष का उपकरण भी है। यह शोध यह भी रेखांकित करता है कि समकालीन दलित कविता नए सौंदर्यबोध, नयी भाषिक ऊर्जा और वैचारिक दृढ़ता के साथ सामाजिक न्याय की दिशा में महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप करती है। अतः यह अध्ययन दर्शाता है कि अंबेडकरवादी कविताएं लोकतांत्रिक मूल्यों,स्वतंत्रता ,समानता और न्याय को पुष्ट करती हैं, 2013–2023 की हिंदी दलित कविता अम्बेडकरवादी चेतना के विस्तार, पुनर्पाठ और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में एक सशक्त साहित्यिक भूमिका निभाती है।

विषय सूची

1. दलित शब्द की अवधारणा एवं स्वरूप 2. अम्बेडकरवादी चेतना का स्वरूप (डॉ. अम्बेडकर दर्शन एवं अस्तित्व प्रमुख स्रोत) 3. हिन्दी के समकालीन दलित कवियों एवं कवयित्रियों का काव्य 4. समकालीन हिन्दी दलित कवियों की कविताओं में अम्बेडकरवादी चेतना की अभिव्यक्ति का स्वरूप 5. समकालीन हिन्दी दलित कविताओं का भाषिक-पक्ष। उपसंहार। आधार ग्रंथ। सन्दर्भ ग्रन्थ। पत्र-पत्रिकाएं।

08. उषा

हिंदी रंगमंच के विकास में नौटंकी के योगदान का अध्ययन ।

निर्देशिका : प्रो. कुसुमलता मलिक

Th 29044

सारांश

रंगमंच का इतिहास हजारों साल पुराना है इसकी उत्पत्ति को लेकर अनेकों मतभेद हैं लेकिन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से ऐसा ज्ञात होता है कि रंगमंच और नाटक की एक विकसित परंपरा हमारे यहाँ थी जिसका प्रसार राजदरबारों से लेकर मंदिरों तक था। लेकिन मध्यकाल तक आते-आते ये रंगमंच लगभग लुप्तप्राय हो गये। मध्यकाल से रंगमंच के लुप्त होने के अनेकों कारण देखने को मिलते हैं जो ऐतिहासिक और राजनैतिक थे। इसी समय में अनेकों बाह्य युद्ध हुए जिससे की रंगमंच और रंगशालाओं को अनेक क्षति पहुँची तथा नये शासकों ने भी रंगमंच की इस शास्त्रीय कला को

प्रश्रय नहीं दिया जिससे राजदरबारों में इस कला से जुड़े कलाकार अपने-अपने नगरों और गांव को पलायन कर गये। ये कलाकार अपने-अपने क्षेत्रों में सक्रिय हो गये जिससे की मध्यकाल में अनेकों लोक-नाट्य परम्पराओं का जन्म हुआ इन लोकनाट्यों में क्षेत्रीय भाषा के अन्तर को छोड़ दे तो ये लगभग एक दूसरे से मिलती-जुलती से लगती है। हिंदी रंगमंच का आरंभ **19**वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आसपास से माना जाता है। हिंदी रंगमंच के विकास में लोकनाट्यों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी रंगमंच ने लोकनाट्यों की तरह संस्कृत या फारसी भाषा को ग्रहण न करके हिंदी और खड़ी बोली को अपनाया, जो कि लोकनाट्यों में भी प्रयोग की जाती थी। विषय वस्तु को देखा जाए तो आरंभ में हिंदी रंगमंच ने लोकनाट्यों में प्रयोग की जाने की लोककथाओं का ही मंचन किया जैसे रामायण, महाभारत, धार्मिक कथाएँ आदि तथा बाद में नये प्रयोग हिंदी रंगमंच के नाटकों में किये गये। हिंदी रंगमंच की संवाद शैली, लयबद्धता तुकबंदी और गायन शैली ये सब लोकनाट्य की देन है रंगमंच पर सीमित साधनों में भी प्रभावशाली प्रस्तुति देना यह लोकनाट्य की विशेषता थी जिसे हिंदी रंगमंच ने भी अपनाया।

विषय सूची

1. रंगमंच की अवधारणा और लोकनाट्य 2. लोकनाट्य की अवधारणा और नौटंकी का स्वरूप 3. उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक चेतना और नौटंकी 4. नौटंकी के विविध रूपों और प्रकारों का अध्ययन 5. नौटंकी की नाट्य भाषा और रंगशिल्प। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

09. कल्याण कुमार
महामति प्राणनाथ और उनका दर्शन ।
निर्देशक : प्रो. प्रदीप कुमार
Th 29300

सारंश

वर्णित शोध में रीतिकालीन संत महामति प्राणनाथ कृत तारतम वाणी में समाहित दर्शन पक्ष को साक्ष्यों सहित प्रस्तुत किया गया हैं। इसके साथ-साथ श्री प्राणनाथ से संबंधित प्राप्त सामग्री, उनका व्यक्तित्व - कृतित्व, युगीन परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। अंत में प्राणनाथ की भक्ति-भावना और भाषा पर विचार किया गया है।

विषय सूची

1. महामति प्राणनाथ संबंधित अध्ययन सामग्री और उसका मूल्यांकन 2. महामति प्राणनाथ : जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व 3. महामजि प्राणनाथ की युगीन पृष्ठभूमि 4. भारतीय एवं भारतीयता से इतर दर्शन 5. महामति प्राणनाथ की वाणी में दर्शन एवं साहित्य का संबंध 6. महामति प्राणनाथ की भक्ति-भावना 7. महामति प्राणनाथ की रचनाओं का काव्य-सौंदर्य। उपसंहार। परिशिष्ट।

10. किशोर कुमार
मृदुला गर्ग और मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यासों में स्त्री पात्र : तुलनात्मक अध्ययन ।
निर्देशिका : प्रो. सुषमा सहरावत
Th 29045

सारांश

स्त्री सृष्टि का अभिन्न अंग है फिर भी वह सदियों से उपेक्षित रही है । प्राचीन काल से घर, परिवार तथा समाज में उसका स्थान कभी श्रेष्ठ तो कभी निम्न होता हुआ दिखाई देता है। महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए नारी उत्थान के लिए कई चरणों में आंदोलन होते आए हैं जो विश्व के हर कोने में समय-समय पर घटित होती रही है । इन विश्व व्यापी आंदोलनों का उद्देश्य बस एक ही था कि स्त्रियों के लिए सुखद भविष्य का निर्माण करना । इसी सुखद भविष्य की पड़ताल करते हुए मृदुला गर्ग और मनीष कुलश्रेष्ठ के उपन्यासों में नारी जीवन के विविध पक्षों पर विचार किया गया है । सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन के दृष्टिकोण से तथा चेतना के स्तर पर स्त्री**?** जैसे गंभीर विषय स्त्रियों के जीवन में चुनौती बनकर उभरते हैं । प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय- "मृदुला गर्ग और मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यासों में स्त्री पात्र **:** तुलनात्मक अध्ययन" है । इसमें मृदुला गर्ग और मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यासों में स्त्री पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । शोध का उद्देश्य विवेचित लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्री चरित्रों की संरचना, उनसे जुड़े प्रश्न जैसे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक जीवन से जुड़ी समस्याएं एवं चुनौतियां को रेखांकित करना । इस अध्ययन में पाठ विश्लेषण पद्धति अपनाई गई है । जिसके माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि दोनों लेखिका अपने-अपने स्तर पर स्त्री संबंधी मुद्दों को किस प्रकार देखती है और इनकी स्त्री पात्र किन स्तरों पर समान या एक दूसरे से भिन्न दिखाई पड़ती हैं । अंतत**:** यह शोध निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि मृदुला गर्ग और मनीषा कुलश्रेष्ठ अपने उपन्यासों में जिन स्त्री छवियों को चित्रित किया है और उनके माध्यम से जिन समस्याओं और प्रश्नों को उठाया है यह न केवल स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को समझने में सहायक है, बल्कि महिलाओं की स्थिति सुधारने और उनकी भूमिका को सशक्त करने के लिए भी आवश्यक है ।

विषय सूची

1. मृदूला गर्ग : व्यक्तित्व और कृतित्व 2. मनीषा कुलश्रेष्ठ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 3. मृदुला गर्ग और मनीषा कुलश्रेष्ठ के अपन्यासों में चित्रित महिला शोषण के विविध आयाम 4. मृदुला गर्ग और मनीषा कुलश्रेष्ठके उपन्यासों में स्त्री : तुलनात्मक अध्ययन 5. मृदुला गर्ग और मनीषा कुलश्रेष्ठ के अपन्यासों में संरचनागत वैशिष्ट्य। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

11. कीर्ति देवी

भूमंडलीकरण और 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास (सन् 2000 से सन् 2020 तक) ।

निर्देशिका **:** प्रो. राजरानी शर्मा

Th 29418

सारंश

भूमंडलीकरण एक आर्थिक नियमन की व्यवस्था के रूप में सामने आया किंतु इसके बाजारवादी पक्ष ने इसे सांस्कृतिक रूपांतरण की प्रक्रिया में डाल दिया जिससे सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य भी प्रभावित हुए। इससे बाजार आधारित अर्थव्यवस्था की बजाए हमने बाजार आधारित समाज व्यवस्था को अपना लिया। इस स्थिति ने हमारे साहित्य को भी प्रभावित किया। परिवेश में सामाजिक,आर्थिक, सांस्कृतिक,राजनीतिक स्थितियों के बदलने पर साहित्य में भी उसकी प्रतिच्छवि रुपायित होती है। 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में भी भूमंडलीकरण के इन प्रभावों को समग्र रूप में वर्णित किया गया है ताकि समाज को दिशा दी जा सके।

विषय सूची

1. भूमंडलीकरण : अवधारणा, स्वरूप और आयाम 2. 21वीं सदी के प्रमुख हिन्दी उपन्यास एवम् भूमंडलीकरण 3. 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास : बाज़ारवाद एवम् उपभोक्तावादी संस्कृति के आर्थिक आयाम 4. 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भो में पाश्चात्य संस्कृति की छाप 5. 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास : राजनीतिक अपराधीकरण के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ 6. 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास एवम् भूमंडलीकरण : नई शैल्पिक संरचना। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ।

12. खान (तसनीम)
शरणार्थी जीवन और हिन्दी उपन्यास : एक अध्ययन ।
निर्देशक : प्रो. ज्ञानतोष कुमार झा, प्रो. अल्पना मिश्र एवं प्रो. संजय कुमार
Th 29047

सारांश

शोध सार जब इंसानियत खत्म हो जाती है तो शरणार्थी संकट जन्म लेता है इसलिए वर्तमान समय में युद्ध, हिंसा और उत्पीड़न के कारण ग्यारह करोड़ तिहत्तर लाख लोग जबरन विस्थापित होने पर मजबूर हुए हैं। मुख्य रूप से लालच से लुप्त सत्ताधारी वर्ग इसके दोषी हैं जिसने आम लोगों के जीवन को क्षत-विक्षत कर दिया। सामान्य खुशहाल जीवन जीने वाले लोगों ने रातों-रात जीवन को बदलते देखा युद्ध-हिंसा जैसी भयंकर घटनाओं ने उन्हें दुनियाँ का सबसे लाचार इंसान बना दिया। शरणार्थियों ने विस्थापन से पहले अपनो को मरते-कटते देखा, अपने सम्पन्न घर और देश को खण्डहरों में बदलते देखा। विस्थापन के बाद मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और महामारी जैसी समस्याओं ने उन्हें जकड़ लिया। कभी सरकारी और गैर सरकारी संगठन उनकी मदद के लिए आगे आए तो कभी कुछ अराजक तत्वों ने और शासक वर्ग ने उनका इस्तेमाल किया। हिंदी साहित्य की विधाओं में शरणार्थी जीवन व्यापक रूप से उभरकर नहीं आया, फिर भी शरणार्थी केंद्रित जितनी रचनाएँ प्रकाश में आई उन्होंने समाज को शरणार्थी समस्याओं से अवगत करवाया। हालांकि सीमित पहुँच के कारण यह रचनाएँ भारत में रहने वाले सभी शरणार्थियों को हिंदी साहित्य की परिधि में शामिल करने से चूक गई और जो रचनाएँ वर्तमान समय में भी प्रकाशित हो रही हैं उनका समय काल भी अतीत की घटनाओं पर ही आधारित हैं इसलिए यह रचनाएँ वर्तमान शरणार्थी समस्याओं से पाठक को जागरूक नहीं कर पाती हैं। वैश्विक स्तर पर इस समस्या को मुखर करना तो दूर की बात है। मुख्य रूप से अज्ञेय लगभग दर्जन भर शरणार्थी कहानी और कविता लिख रहे थे जिसको आज भी पढ़कर हिंदी के पाठक में इस त्रासदी के प्रति एक समझ बनते हुए दिखती है। इस शोध कार्य के अंतर्गत बारह उपन्यासों को आधार बनाया गया है। प्रत्येक उपन्यास एक ही विषय पर आधारित होते हुए भी नई दृष्टिकोण के साथ लिखा गया है। किसी उपन्यास में शरणार्थी स्त्री के जीवन की पीड़ा को दिखाया गया है तो किसी उपन्यास में आर्थिक वर्गगत भिन्नता के कारण उत्पीड़न के स्वरूप में अंतर को दिखाया गया है। किसी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक समस्या से जूझते लोगों के जीवन की विडंबना देखने को मिलती है। तो किसी उपन्यास में शरणागत देश के लोगों के साथ आपसी संघर्ष को दिखाया गया है। किसी उपन्यास में अपने ही देश और अपनों के बीच विदेशी नागरिक हो जाने की दुखद गाथा को दिखाया गया है। तो किसी उपन्यास में उस ऐतिहासिक घटनाओं का सूक्ष्म रूप से वर्णन किया गया है जिसके प्रभाव ने उन्हें हमेशा के लिए शरणार्थी पहचान के साथ दोयम दर्जे का नागरिक बनकर रहने पर मजबूर किया। तो किसी उपन्यास में पुनः अपनी मातृभूमि में पर्यटक के रूप में जाने की त्रासदी को दिखाया गया है। तो किसी उपन्यास में भावी पीढ़ी में

सांस्कृतिक पहचान के लुप्त हो जाने के खतरे से चिंतित वयस्कों को दिखाया गया है। हर एक उपन्यास अपने कथानक के साथ यथार्थ रूप से शरणार्थी जीवन की समस्या को दिखाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शोध में किया गया साक्षात्कार कार्य उन तमाम पहलुओं को भी खोलता है जो अछूते रह गए थे। प्रत्यक्ष रूप से शरणार्थियों के जीवन को जानना और देखना आपको साक्षी बनाता है शरणार्थियों के त्रासद जीवन का। यह स्थिति अत्यंत दुखद है, जिसने व्यक्ति को उसकी जड़ों और मूल पहचान से चीरकर अलग कर दिया।

विषय सूची

1. शरणार्थी जीवन अवधारणा एवं स्वरूप 2. हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में शरणार्थी समस्याएँ 3. शरणार्थी जीवन पर आधारित उपन्यास 4. हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त शरणार्थीजीवन की समस्याएं 5. शरणार्थी जीवन पर आधारित हिन्दी उपन्यासए संवेदना और शिल्प। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

13. गुप्ता (डॉली)
रामचरितमानस में वर्णित मानवेतर एवं आसुरी पात्र ।
निर्देशिक : प्रो. हरीन्द्र कुमार
Th 29048

सारांश

रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित एक महान महाकाव्य है, जिसमें मानव, देव, वानर, राक्षस एवं अन्य मानवेतर पात्रों का सजीव और प्रतीकात्मक चित्रण मिलता है। इस ग्रंथ में मानवेतर एवं आसुरी पात्र केवल कथा-विस्तार का साधन नहीं हैं, बल्कि वे नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों को स्पष्ट करने का माध्यम भी हैं। मानवेतर पात्रों में वानर, भालू, पक्षी एवं दैवीय शक्तियाँ प्रमुख हैं। हनुमान, सुग्रीव, जामवंत और अंगद जैसे वानर पात्र शक्ति, भक्ति, साहस और निष्ठा के प्रतीक हैं। हनुमान जी को सर्वोच्च भक्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिनमें अलौकिक बल के साथ विनम्रता और विवेक का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। जटायु और संपाती जैसे पक्षी पात्र धर्म, त्याग और कर्तव्यबोध का संदेश देते हैं। ये मानवेतर पात्र यह दर्शाते हैं कि श्रेष्ठ गुण किसी जाति या रूप तक सीमित नहीं होते। आसुरी पात्रों में रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद, ताड़का, मारीच और शूर्पणखा प्रमुख हैं। रावण अत्यंत विद्वान, शक्तिशाली और शिवभक्त होते हुए भी अहंकार, काम और अधर्म के कारण पतन को प्राप्त होता है। कुंभकर्ण में शौर्य और सरलता है, परंतु अधर्म के पक्ष में खड़े होने के कारण उसका अंत होता है। मेघनाद शक्ति और पराक्रम का प्रतीक है, किंतु धर्मविरोधी होने से विनाश को प्राप्त होता है। इस प्रकार रामचरितमानस में मानवेतर एवं आसुरी पात्रों का चित्रण धर्म और अधर्म, भक्ति और अहंकार, सद्‌गुण और दुर्गुण के द्वंद्व को स्पष्ट करता है। ये पात्र कथा को रोचक बनाने के साथ-साथ पाठक को नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करते हैं।

विषय सूची

1. तुलसीदास : जीवनवृत्त एवं रचना संसार 2. तुलसीदास युग परिवेश 3. रामचरितमादस में वर्णित चरित्र एवं प्रमुख पात्र 4. रामचरितमानस की कथा संरचना में प्रमुख मानवेतर एवं आसुरी पात्रों का चरित्र चित्रण एवं महत्व 5. रामचरित्रमानस में वर्णित प्रमुख मानवेतर और आसूरी पात्रों की प्रासंगिकता 6. रामचरितमानस के मानवेतर एवं आसुरी वृत्ति पात्रों की भाषा शैली। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

14. गोंड (त्रिपुरेश)

हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन का संघर्ष (सन् 1980 से 2010 तक) ।

निर्देशिका : प्रो. स्नेह लता नेगी एवं प्रो. आशुतोष कुमार

Th 29050

सारांश

प्रस्तुत शोध कार्य में 1980 से 2010 तक की अवधि के हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन, उनके अस्तित्व-संघर्ष तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनशीलताओं का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक भारतीय साहित्य में आदिवासी समुदाय को लेकर लिखे गए कथ्य, पात्र-निरूपण, संघर्ष-पक्ष, राजनीतिक-सामाजिक विसंगतियों और विकास की प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी से सम्बद्ध विमर्शों ने व्यापक स्थान पाया है। फिर भी, आदिवासी जीवन के वास्तविक संघर्ष, उनके दैनंदिन जीवन, सामाजिक संरचना, आर्थिक परतों, सांस्कृतिक पहचान तथा प्राकृतिक संसाधनों पर उनके अधिकार से जुड़े प्रश्नों पर केन्द्रित गहन अध्ययन का अभाव महसूस किया जाता है। यही अंतराल इस शोध को आवश्यक और प्रासंगिक बनाता है। इस शोध के अंतर्गत 1980–2010 के बीच प्रकाशित प्रमुख हिन्दी उपन्यासों—जिनमें आदिवासी समाज की समस्याएँ, वंचनाएँ, विस्थापन, शोषण, जीवन-पद्धति, लोकपरंपराएँ और अस्मिता-संकट प्रमुखता से प्रकट होते हैं—का वस्तुनिष्ठ एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। उपन्यासों में आदिवासी पात्रों और उनके संघर्षों को किस दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है, लेखक की दृष्टि कितनी सहानुभूतिपूर्ण या यथार्थपरक है, तथा उपन्यासों में आदिवासी समाज का स्वर मुखर है या प्रतिनिधिक—इन बिंदुओं का परीक्षण शोध की प्रमुख आधार-रेखा है। साथ ही, भूमंडलीकरण, औद्योगिक विकास, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन, जंगल-जमीन के अधिकार, जल-जंगल-जमीन आंदोलन, तथा सामाजिक-राजनीतिक उत्पीड़न जैसे प्रसंगों के साहित्यिक प्रतिरूपों का भी आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। शोध का उद्देश्य न केवल हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन-संघर्षों की प्रकृति और प्रस्तुति को रेखांकित करना है, बल्कि यह भी स्पष्ट करना है कि ये उपन्यास किस प्रकार आदिवासी समाज की बदलती हुई परिप्रेक्ष्य-स्थितियों का दस्तावेज बनते हैं। यह अध्ययन आदिवासी जीवन के विविध पक्षों को साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में समझने की दृष्टि प्रदान करता है और समकालीन तथा भावी समाज के लिए आदिवासी अस्मिता, अधिकार और संघर्ष को नए विमर्श की दिशा देता है। इस प्रकार यह शोध अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक उपादेयता के कारण अत्यंत महत्व का सिद्ध होता है।

विषय सूची

1. आदिवासी समाज की अवधारणा इतिहास और सामाजिक संरचना 2. हिन्दी आदिवासी उपन्यासों का उद्‌भव एवं स्वरूप 3. विवेच्य हिन्दी आदिवासी उपन्यासों में चित्रित सामाजिक यथार्थ 4. विवेच्य हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी और उनकी सभ्यता का विवेचन 5. विवेच्य हिन्दी आदिवासी उपन्यासों में चित्रित स्त्री अस्मिता 6. आज का समय और आदिवासी समाज की वर्तमान स्थिति। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची ।

15. गौड़ (मोहित)

21 वीं सदी के प्रथम दो दशक के प्रमुख हिंदी उपन्यासों में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का अनुशीलन।

निर्देशक : प्रो. प्रभात शर्मा

Th 29419

सारंश

साहित्य का संबंध जहाँ एक ओर समाज से जुड़ा होता है तो दूसरी। तरफ चेतना का संबंध साहित्यकार से जुड़ा होता है। वह अपने जीवन के आदर्शों को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से अपनी रचनाओं में व्यक्त करता है। साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक परिस्थितियाँ साहित्यकार का समाज से प्रभाव का ही परिणाम होता है। साहित्यकार अपने आसपास हो रहे बदलाव को अपनी रचनाओं का विषय बनाता है और समाज को संदेश देता है और जागरूक करता है। उपन्यास का मुख्य उपजीव्य समाज की समस्याएं और विषमताएं ही बनती हैं। उपन्यास की उत्पत्ति के मूल में वर्तमान जीवन की जटिल यथार्थवादिता होती है। कहा जाता है की साहित्य का जीवन से वही सम्बंध है, जो अंकुर का अपनी मिट्टी से है। उपन्यास हमें अपने समय का महाकाव्य लगता है। मुंशी प्रेमचंद ने "उपन्यास को मानव के चरित का चित्र" कहा था। इस सदी में मुख्य रूप से स्त्री-विमर्श, किन्नर विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, आदि उभरकर सामने आए। इन सारी विमर्शों के केंद्र में-"मानव मुक्ति की आकांक्षा" प्रबल रही है। मुक्ति का अर्थ संसार से पलायन नहीं है, अपितु अपने ही परिवार, समाज़ में हो रहे शोषण, उत्पीड़न, हिंसा आदि से मुक्ति है। मेरे शोध का विषय "21वीं सदीं के प्रथम दो दशक के प्रमुख हिंदी उपन्यासों में सामाजिक- सांस्कृतिक चेतना का अनुशीलन" है। अपने शोध कार्य को मैंने पांच भागों में विभाजित किया है। पहले भाग में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना निर्माण के आधार और प्रकिया को बताया है। 21वीं सदी के 11 उपन्यासों को चयन कर मैंने अपने शोध कार्य का आधार बनाया है तथा द्वितीय अध्याय 'सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश एवं चयनित उपन्यासों का कथ्य' है। वर्तमान युग बौद्धिक, तार्किक, वैज्ञानिक तथा यांत्रिक युग है इसके प्रभाव से जीवन और जगत अछूता नहीं है। तकनीकी एवं वैश्वीकरण के दौर ने पूरे विश्व को बदलकर रख दिया है इस बदलाव का असर संपूर्ण समाज पर दिखाई देता है समाज में होने वाले इस बदलाव का एक परिणाम यह भी हुआ की साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। कहा भी जाता है "साहित्य समाज का दर्पण है" साहित्य ने नई-नई प्रवृत्तियों को ग्रहण कर अपने कलेवर को बदला यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि जब-जब समाज में बदलाव आता है तब साहित्य भी अपना स्वरूप बदल लेता है और इसी बदलाव की प्रक्रिया में समाज को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जिसे साहित्यकार इन्हीं चुनौतियों को केंद्र मानकर अपने साहित्य में स्थान देता है। 21 वीं सदी के उपन्यासों में समाजिक सम्बन्धों में आये बदलाव, नई-पुरानी पीढ़ी का अंतर्द्वंद्व, थर्ड जेंडर की समस्या, पारिवारिक समस्याए, पर्यावरण की समस्या, स्त्री-पुरुष संबंधों का बदलता स्वरूप, किसान समस्या,आदि समस्याओं को प्रमुखता से अभिव्यक्त किया गया है। वैश्वीकरण के प्रभाव से समाज में व्यापक स्तर पर परिवर्तन आए है, इंटरनेट और संचार माध्यम ने व्यक्ति को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। भूमंडलीकरण के प्रभाव से बदली इन परिस्थितियों का चित्रण हमें 21वीं सदी के प्रथम दो दशकों के हिन्दी उपन्यासों में विस्तृत फलक पर देखने को मिलता है। चौथे अध्याय में चयनित उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए लोक व्यवहार और आस्था, मूल्य निर्माण एवं परंपराएँ, रीति-रिवाज एवं उत्सवधर्मिता इत्यादि सभी पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। एवं पंचम अध्याय में भाषा शिल्प विधान पर समग्र दृष्टिकोण से विचार व्यक्त किए गए है।

विषय सूची

1.सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना : वैचारिक परिप्रेक्ष्य 2. 21वीं सदी का सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य एवं एवं चयनित उपन्यासों का कथ्य 3. चयनित उपन्यासों में चित्रित सामाजिक चेतना 4. चयनित उपन्यासों में चित्रित सास्कृतिक चेतना 5. चयनित उपन्यासों में शिल्प विधान। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

16. गौरव प्रकाश
विद्यापति - पदावली और लोकमानस ।
निर्देशक : डॉ. ओम मिश्रा
Th 29051

सारांश

प्रस्तुत शोध-ग्रंथ में विद्यापति - पदावली के अंतर्गत लोक-तत्व के अन्वेषण के माध्यम से यह अनुसंधान किया गया कि पदावली किस तरह से लोकमानस पर प्रभाव डालती है और प्रभाव ग्रहण करती है।

विषय सूची

1. विद्यापति : परिवेश और व्यक्तित्व 2. लोकमानस और विद्यापति 3. पदावली और लोकमानस का स्वरूप 4. पदावली का शिल्प और लोकमानस 5. भाषा सौंदर्य और लोकमानस । उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

17. चतुर्वेदी (आदित्य)
रामचरितमानस के राम और लोकगीतों में प्रचलित राम की छवि का तुलनात्मक अध्ययन ।
निर्देशिका : डॉ. रामकिशोर यादव
Th 29301

सारांश

तुलसी कृत 'श्रीरामचरितमानस' के राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं, सत्य का आचरण करने वाले हैं, वे शील शक्ति और सौंदर्य के प्रतीक हैं। वे विष्णु के अवतार हैं और लीला करते हुए भी उनका ईश्वरत्व खंडित नहीं होता है। तुलसी के यहाँ राम मर्यादा पुरुषोत्तम, दशरथनंदन ,अंतर्यामी एवं ब्रह्म के रूप में चित्रित हैं। इसमें मर्यादा पुरूषोत्तम सबसे पूज्यनीय है। तुलसी के राम सब दोषों से मुक्त हैं, वे जन-नायक हैं, वे लोक में विद्यमान दुखों का निवारण करने वाले हैं। लोक साहित्य में राम की छवि शिष्ट साहित्य के रामकथाओं से भिन्न हैं। लोकगीतों में राम कथा के प्रसंग विश्रन्खलित घटना के रूप में ही मिलते हैं, क्रमबद्ध रूप में नहीं। फिर भी ह्रदय के सरल भावों से लेकर अंतर्मन के गूढ़ भावों तक, कोई ऐसा मार्मिक भाव नहीं है जो लोकगीतों का विषय न बन सका हो। अवध, मिथिला, भोजपुर आदि क्षेत्रों में प्रचलित लोकगीतों में राम का स्वरुप बिल्कुल ही अलग है। लोकगीतों के राम कोई ईश्वर नहीं है वे एक साधारण मनुष्य हैं, वे आम जनमानस का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकगीतों में भी रामायण के अनेक जीवन प्रसंग है, जो लोकजीवन की भावनाओं को अपने में समेटे हुए हैं। रामकथा से सम्बंधित अनेकों साहित्य की रचना मानवीय धरातल पर की गयी है, परन्तु लोकगीतों में रामकथा का मानवीय रूप मनोविज्ञान की उन सूक्ष्मतम विशेषताओं से होकर व्यक्त हुआ है, जिसने राम-कथा को आम-जनमानस की कथा बना दिया। लोकगीतों में राम अपनी अलौकिकता और देवत्व की प्रतिमा को त्याग कर धरती के सामान्य जन की तरह प्रकट हुए हैं। राम का जो सहज रूप मानवीय धरातल पर लोक-कवियों एवं लोक-गायकों द्वारा व्यक्त हुआ है, उसने रामकथा को अधिक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक रूप प्रदान किया है।

विषय सूची

1. लोकगीतों का स्वरूप और वर्गीकरण 2. विविध साहित्यिक ग्रंथों में रामकथा 3. रामचरितमानस में राम का स्वरूप 4. लोकगीतों में प्रचलित राम का स्वरूप 5. रामचरितमानस के राम और लोकगीतों में प्रचलित राम के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन। उपसंहार। आधर ग्रंथ सूची। संदर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्ट।

18. चौधरी (प्रियंका)

यौनिकता का समाज विज्ञान और हिन्दी उपन्यास (विशेष संदर्भ;1990 से 2020 तक के प्रतिनिधि उपन्यास) ।

निर्देशक : प्रो. सुधा सिंह एवं प्रो. अनिल राय एवं चंदन कुमार

Th 29052

सारांश

यौनिकता से अभिप्राय व्यक्ति के जैविक यौन व्यवहार से नहीं बल्कि व्यक्ति की इच्छा, अनुभव, अभिव्यक्ति व आत्मबोध से है। जबकि प्रजनन के अभिविन्यास में यौनिकता की परिभाषा को नियंत्रित व फलीभूत किया जाता रहा है।जिसका एकमात्र उद्देश्य धर्म, जाती, वर्ग आदि को विषमलिंगी संबंधों के पृष्ठ -पोषण के रूप में विश्लेषित होकर उठाना पड़ा।व्यक्ति को "योग्य शरीर" होने में ही उसकी सार्थकता समझा गया। यौनिकता की स्वतंत्र अभिव्यक्ति व इसे साक्ष्य बनाने के लिए सामाजिक संरचनाओं तथा इनके स्थापित मानदंडों को चुनौती देने के लिए ज़रूरी है -"यौनिकता का समाज विज्ञान और हिन्दी उपन्यास"(विशेष संदर्भ: 1990 से 2020 तक के प्रतिनिधि उपन्यास) का आलोचनात्मक विश्लेषण। प्रस्तुत शोध प्रबंध को कुल छ: अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय; यौनिकता : सेक्स, जेंडर और समाज, द्वितीय; यौनिकता एवं परंपरागत जीवन मूल्य, तृतीय; 1990 से 2020 के हिन्दी उपन्यासों में यौनिकता के विविध रूप, चतुर्थ; यौनिकता का अन्य पक्ष: किन्नर समाज और हिन्दी उपन्यास, पंचम; समलिंगी यौनिकता और 1990-2020 तक के हिन्दी उपन्यास, षष्ठ अध्याय; यौनिकता पर आधारित उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन है। निष्कर्षत: प्रस्तुत शोध प्रबंध के आधार पर कहा जा जकता है की यौनिकता सिर्फ़ हमारी महसूस की गई चाहते या इच्छाएँ ही नहीं, हमारी ज़िंदगी का विशेष आयाम है जिसके प्रति स्वीकार्यता की भावना मानव संसाधन को नयी ऊँचाइयों पर ले जाती है। यहाँ समझने की ज़रूरत है की हर इंसान एक-दूसरे से अलग होता है। ठीक उसी तरह उसकी पसंद भी एक -दूसरे से अलग होती है। ऐसे में हमारी यौनिक चाहत क्या है? आने वाले समय में यह क्या रूप लेगी या हम किसकी तरफ़ आकर्षित होंगे इन सभी में स्थिरता और समानता नहीं है। यह जीवन की वास्तविकता है और इसे स्वीकार करना अति आवश्यक है की यौनिकता मानव व्यक्तित्व और उसकी पहचान का केंद्र बिंदु है।

विषय सूची

1. सेक्स, जेण्डर और समाज 2. यौनिकता एवं परम्परागत जीवन मूल्य 3. 1990से 2020के हिन्दी उपन्यासों में यौनिकता के विविध रूप 4. यौनिकता का अन्य पक्ष : किन्नर समाज और हिन्दी उपन्यास 5. समलिंगी यौनिकता और 1990–2020 तक के हिन्दी उपन्यास 6. यौनिकता पर आधारित उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ।

19. चौधरी (मनीषा)

21वीं सदी की महिला कहानीकार और उनकी कहानियों में मूल्यगत परिवर्तन (विशेष संदर्भ 2000-2022) ।

निर्देशिका : प्रो. प्रज्ञा

Th 29053

सारांश

लेखिकाओं ने युग परिवेश से टकराते हुए व संघर्ष करते हुए अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्ति की है। आज जब हम 21वी सदीं की बात करते हैं तो उसमें मूल्यों , विचारों और चुनौतियों की करते हैं। वहीं अगर हम 21वीं सदी के पूर्व की बात करें तो बीसवीं सदी की शुरुआत दुनिया भर के उपनिवेशों के संघर्ष और मुक्ति के साथ लोकतंत्र स्वतंत्रता और समता के मूल्यों के लिए संघर्ष से होती है वहां यह उम्मीद बंधती दिखाई देती है कि अब हमारी दुनिया पहले से बेहतर होगी ।हजारों करोड़ो लोगों का सांमती, जातिवादी साम्प्रदामिकता पोषित शक्तियों और इन मनुष्य विरोधी सत्ताओं से मुक्ति का सपना जैसे सच होता दिखता है लेकिन 20वीं सदी के अंत तक आते-आते पूँजीवादी नव साम्राज्यवाद मानव मुक्ति के इन मूल्यों को खोखला कर देता है और एक नए तरह का तरह का उभरता पूंजीवाद, भूमंडलीकरण , निजीकरण और आर्थिक उदारीकरण के रथ पर सवार होकर लोगों को समृद्धि का नया सपना बांटता नजर आता है। 20वीं सदीं की कहानियाँ जिन समस्याओं को उठा रही थी, 21वीं सदी की कहानियां भी उन्हीं को उठा रही है. फर्क बस इतना है कि अब ये समस्त्राएं अधिक विकराल रूप धारण कर चुकी है। 21वीं सदी की बात जब होगी तब उसमें मूल्यों विचारों और चुनौतियों की होगी ।एक तरफ मंडलीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी के विस्फोट का निजीकरण उनका वैश्विक मंदी, बड़े सस्थानों का पाला हर तरफ दिखानी देती है अस्थिरता पहले से विकराल होती साम्प्रदायिकता जातीय और नस्लीय हिंसा और उसके लिए सूचना प्रोद्योगिकी का उपभोग हुआ है।आज दूसरी तरफ सत्ताओं द्वारा बड़े ही सुनियोजित संगठित तरीके से कट्टर विचारधाएँ मजबूत की गई है। जन आंदलतों को दबाया गया है, शक्तिहीन किया गया। संघर्षो से अर्जित किए गए लोकतंत्र को अवमूल्यन हुआ और जनतांत्रिक शक्तियों पर संकट गहराता गया। आज की कहानी, शिक्षा, बाजार, छद्म जनतंत्र, विकास की असमान नीतियाँ और जनाक्रोश के चेहरों को सामने ला रही है।

विषय सूची

1. मूल परिभाषा एवं स्वरूप 2. 21वीं सदी का भारतीय परिवेश और महिला लेखन परम्परा 3. 21वीं सदी की लेखिकाओं की कहानियों में सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन 4. 21वीं सदी की लेखिकाओं की कहानियों में सांस्कृतिक व धार्मिक मूल्यों में परिवर्तन 5. 21वीं सदी की लेखिकाओं की कहानियों में आर्थिक व राजनीतिक मूल्यों में परिवर्तन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

20. जायसवाल (आशीष)

कश्मीर आधारित हिंदी उपन्यासों में चित्रित सांप्रदायिकता एवं विस्थापन ।

निर्देशक : डॉ. राजेश कुमार शर्मा

Th 29054

सारांश

यह अध्ययन पाँच अध्यायों में विभाजित है, जिनमें कश्मीर के इतिहास, संस्कृति, राजनीति और कश्मीर-केंद्रित हिंदी उपन्यासों के विविध पक्षों का समग्र विश्लेषण किया गया है। प्रथम अध्याय "कश्मीर: एक सामान्य परिचय" में कश्मीर के इतिहास, समाज, संस्कृति और राजनीति का अध्ययन किया गया है। इसमें हिन्दू, इस्लाम और बौद्ध धर्म से संबंधित कश्मीर के उदय की कथाओं तथा ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उसके गौरवशाली अतीत को समझने का प्रयास किया गया है। यह अध्याय कश्मीर को भारत के एक महत्वपूर्ण, बहुआयामी और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्र के रूप में स्थापित करता है। द्वितीय अध्याय *कश्मीर आधारित हिंदी उपन्यासों में चित्रित कश्मीरियत पर केंद्रित है। इसमें कश्मीर के रीति-रिवाज, परंपराएँ, लोकजीवन और लोकसाहित्य के माध्यम से कश्मीरियत की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। हिन्दू-मुस्लिम भाईचारा कश्मीरियत की आधारशिला के रूप में प्रस्तुत हुआ है। साथ ही उपन्यासों की शिल्पगत विशेषताओं—जैसे ब्लॉग, चैट, डायरी, आत्मालाप तथा कश्मीरी भाषा और लोक तत्त्वों—पर भी प्रकाश डाला गया है। तृतीय अध्याय *कश्मीर और राजनीति* में स्वतंत्रता पूर्व और बाद की राजनीतिक परिस्थितियों, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, पहचान संकट और विस्थापन जैसे विषयों को साहित्य के माध्यम से समझा गया है। इसमें शेख अब्दुल्ला की नीतियाँ, कबायली आक्रमण और केंद्रशासित राज्य बनने के प्रभावों की चर्चा है। चतुर्थ अध्याय में *कश्मीर-केंद्रित हिंदी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता और उसके प्रभाव* का विश्लेषण किया गया है। इसमें हिंसा और पीड़ा के साथ-साथ इंसानियत, सौहार्द और आशा की संभावनाओं को भी रेखांकित किया गया है। पंचम अध्याय *विस्थापन की समस्या* पर आधारित है, जिसमें 1990 के दशक के आतंकवाद से उत्पन्न विस्थापन, विशेषतः कश्मीरी पंडितों की त्रासदी, और उसके सामाजिक-मानसिक प्रभावों को साहित्य के माध्यम से समझाया गया है।

विषय सूची

1. कश्मीर : एक सामान्य परिचय 2. कश्मीर आधारित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित कशमीरियत 3. कशमीर और राजनीति 4. कश्मीर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में त्रित्रित साम्प्रदायिकता एवं उसके प्रभाव 5. कश्मीर आधारित हिन्दी उपन्यासें में विस्थापन की समस्या। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

21. झा (ज्योति)

मॉरिशस के हिंदी कथा साहित्य में अभिव्यक्त गिरमिटिया मज़दूरों की भाषा और संस्कृति का अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. राम किशोर यादव

Th 29302

सारांश

भारतीय समाज में भी समय-समय पर विस्थापन हुए हैं। भारत से बहुत से लोग धार्मिक, सामाजिक तथा व्यापारिक कारणों से विभिन्न देशों में गए। भारत में औपनिवेशिक शासन के स्थापना से पूर्व यह आप्रवासन की प्रक्रिया स्वैच्छिक रही है। प्राचीन समय में भारतीय व्यापारी वर्ग, विश्व के विभिन्न देशों में व्यापार करने गए, यह व्यापारी वर्ग अल्पकालिक प्रवासी था। इसके अलावा भारत से बहुत से लोग अपने धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए विभिन्न देशों में गए। सम्राट अशोक ने अपने शासनकाल में बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए बहुत से लोगों को श्री लंका आदि देशों में भेजा। ये धार्मिक प्रचारक भी अल्पकालिक या पूर्णकालिक प्रवासी थे। इस प्रवासन की प्रक्रिया में किसी प्रकार का ज़ोर जबरदस्ती दिखाई नहीं देता है। न ही भारतीयों की कोई ऐसी मजबूरी है,

जिसके कारण उन्हें अपने देश को छोड़ना ही पड़ेगा। अंग्रेजों ने 'अनुबंधित श्रम प्रणाली' के तहत भारत से किसानों तथा मज़दूरों को 'गिरमिटिया मजदूर' के रूप में अपने विभिन्न उपनिवेशों ले गए। भारतीय किसान तथा मजदूर औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत गरीबी तथा भुखमरी से परेशान तो थे ही। अंग्रेजों तथा इनके द्वारा नियुक्त दलालों ने लोगों को अच्छे जीवन तथा सुख सुविधाओं की प्राप्ति का स्वप्न दिखाया। लेकिन वहाँ पहुंचने पर हकीकत कुछ और थी। क्योंकि इन गिरमिटिया मज़दूरों को यह नहीं पता था कि वे दासों के प्रतिस्थानापन्न के रूप में जा रहे हैं। 1834 में दास प्रथा पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के विभिन्न उपनिवेशों में बागानों में काम करने के लिए मज़दूरों की कमी हो गई। इससे इनके आर्थिक हित प्रभावित होने लगे। मज़दूरों की इस कमी की पूर्ति करने के लिए 'अनुबंधित श्रम प्रणाली' की प्रथा प्रारंभ की गई। जिसके तहत मज़दूरों तथा किसानों से पांच वर्ष का एग्रीमेंट किया जाता था। जिसमें किसानों तथा मज़दूरों को दिए जाने वाले वेतन तथा भत्तों का जिक्र होता था। किसानों तथा मज़दूरों को जो अधिकांशतः अनपढ़ थे, उनसे इस पर अंगूठा लगवाया जाता था। इस 'एग्रीमेंट' को ही 'गिरमिट' कहा जाता था। जिसके साथ यह अनुबंध किया जाता था उसे 'गिरमिटिया' कहा जाता था। अतः भारत से गिरमिटिया मजदूर के रूप में बहुत से लोग ब्रिटिश उपनिवेशों में गए। गिरमिटिया मजदूर के रूप में मुख्य रूप से गन्ने के खेतों में काम करने के लिए भारतीय मजदूर मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, ब्रिटिश गुयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो जैसे उपनिवेशों में ले जाये गए। प्रस्तुत शोध विषय "मॉरिशस के हिंदी कथा साहित्य में अभिव्यक्त गिरमिटिया मज़दूरों की भाषा और संस्कृति का अध्ययन" पर शोध कार्य 'प्रवासी साहित्य' को आधार बनाकर किया गया है। आज के समय में गिरमिटिया प्रवासी समुदायों से संबंधित प्रचुर मात्रा में तथ्य, सूचनाएं और साहित्य उपलब्ध है। जिसमें इनके द्वारा अपनी भाषा, संस्कृति तथा अस्मिता की रक्षा के लिए किए गए संघर्ष की अभिव्यक्ति है। प्रवासी गिरमिटिया समुदायों के बारे में सरकारी दस्तावेजी प्रमाण न के बराबर उपलब्ध है। जो कुछ उपलब्ध है वह एकांगी है। वह शासकों के दृष्टिकोण के बारे में ज्यादा जानकारी देता है। गिरमिटिया समुदायों की वास्तविक स्थिति के बारे में इसमें जानकारी नहीं है। इसलिए प्रस्तुत शोध विषय में साहित्य को आधार बनाया गया है।

विषय सूची

1. 'गिरमिटिया मजदूर' ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ 2. गिरमिटिया मजदूर और मॉरिशसः ऐतिहासिक स्थिति 3. प्रवासी साहित्य और गिरमिटिया मजदूर 4. गिरमिटिया मजदूर और हिन्दी कहानी (प्रमुख चुने हुए रचनाकारों की कहानियों का विश्लेषण) 5 गिरमिटिया मजदूर और हिन्दी उपन्यास (प्रमुख चुने हुए रचनाकारों के उपन्यासों का विश्लेषण)। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

22. **त्रिपाठी (महिपाल)**

हरिहर और जिज्ञासु के साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. मुकेश कुमार

Th 29097

सारांश

हरिहर और जिज्ञासु के साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए यह पता चला कि दलित शब्द एक ऐसे बहिष्कार समाज को चिन्हित करता है जिसको मुख्यधारा के समाज ने अपने से पृथक किया हुआ है। मुख्यधारा के समाज के सवर्णों द्वारा बनायी गयी वर्ण-व्यवस्था में दलित आखिरी पायदान पर हैं। इस मुख्यधारा के समाज ने इन दलितों को नीच समझकर

उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया, उनको अपना दास समझकर सभी गंदे कार्य करवाते थे। मेरे इस शोध प्रबंध में पाँच अध्याय हैं। जिसमें पहला तथा दूसरा अध्याय हिन्दी दलित साहित्य तथा हरिहर और जिज्ञासु के परिचय का विवेचन करता है। तीसरे अध्याय में हरिहर तथा जिज्ञासु के साहित्य में सामाजिक मिथकों के प्रति विद्रोह का स्वरूप कैसा था इस पर विवेचना की गई है। चौथे अध्याय में हरिहर तथा जिज्ञासु के साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन कर सभी सामाजिक समस्याओं को उजागर किया गया है साथ ही, उन समस्याओं से कैसे निजात पाना है उस पर भी प्रकाश डाला गया है। पांचवें अध्याय में हरिहर और जिज्ञासु के साहित्य का शिल्प और शैलीगत अध्ययन किया गया है।

विषय सूची

1. हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास और धर्मयुग तक की यात्रा 2. हिन्दी की साहित्यिक – सांस्कृतिक पत्रकारिता में धर्मयुग पत्रिका का सरोकार 3. धर्मयुग पत्रिका का वृहद साहित्यिक अवदान 4. धर्मयुग पत्रिका का सांस्कृतिक अवदान 5 धर्मयुग पत्रिका की समृद्ध विरासतः बाजारवाद और भूमंडलीकरण। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

23. तिवारी (प्रदीप)

धर्मयुग पत्रिका की साहित्यिक - सांस्कृतिक दृष्टि (विशेष सन्दर्भ : डॉ. धर्मवीर भारती का संपादन काल) ।

निर्देर्शिका : प्रो. मुकुंद शर्मा

Th 29059

सारांश

धर्मवीर भारती के माध्यम से धर्मयुग ने हिंदी पत्रकारिता में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक संदर्भों में भी उत्कृष्ट बन पड़ी है। फिर भी पत्रकारिता सही अर्थों में समाज का मुखौटा है। जिस समाज में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ हों, समाज आधुनिकता के मोह में विनाश के तरफ अग्रसर हो, उपभोक्तावाद का बोलबाला हो, तो पत्रकारिता इससे अछूता नहीं रह सकता है। स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता में धर्मयुग का महत्व इसलिए भी निर्णायक है क्योंकि धर्मयुग की जो भी चिन्तायें थी वह बिल्कुल सत्य थी इसलिए धर्मयुग न केवल स्वतंत्र पत्रकारिता का मापदण्ड बना बल्कि उसने आगे चलकर पाठकीय चेतना को विकसित करने का भी काम किया। धर्मयुग की निर्भीक पत्रकारिता ने सत्ता को झकझोर कर रख दिया तथा समाज में आदर्श स्थापित करने का भरपूर प्रयास किया।

विषय सूची

1.हिन्दी दलित साहित्य : एक परिचय 2. स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' और चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु के साहित्य का युग परिवेश 3. 'हरिहर' और 'जिज्ञासु' के साहित्य में सामाजिक मिथकों के प्रति विद्रोह का स्वरूप 4. 'हरिहर' और 'जिज्ञासु' के साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन 5'हरिहर' और 'जिज्ञासु' के साहित्य का शिल्पगत और शैलीगत अध्ययन। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

24. तोमर (सोनम)

हिंदी साहित्यिक कृतियों पर आधारित सिनेमाई पटकथाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. मधु लोमेश

Th 29303

सारांश

हिंदी सिनेमा अपनी सौ वर्षों से अधिक की यात्रा पूरी कर चुका है। इस दौरान सिनेमा ने बदलते दौर के कई रंगों को देखा है। मनोरंजन के साथ-साथ समसामयिक विषयों पर ध्यान केंद्रित करते हुए जनमानस को जागरुक ही नहीं वरन् संघर्ष, विद्रोह और उम्मीद का दामन थामकर लोकप्रियता के शिखर तक का सफ़र तय किया है। साहित्य और सिनेमा दोनों का पारस्परिक संबंध बहुत गहरा रहा है। सिनेमा सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का सशक्त माध्यम है। सिनेमा ने इतने कम समय में समाज को जिस तरह प्रभावित किया है वह सराहनीय है। सिनेमा, साहित्य की एक विधा नाटक का परिष्कृत एवं परिमार्जित व्यावसायिक रूप है। जिस प्रकार नाटकों में दृश्य और श्रव्य का महत्त्व होता है उसी प्रकार सिनेमा में भी होता है। हिंदी नाटक और सिनेमा में कुछ समानताएं और कुछ असमानताएं भी हैं। कथा दोनों का मूल आधार होती है। सिनेमा बनाते समय कथा का पटकथा के रूप में रूपांतरण हो जाता है। पटकथा दो शब्दों के मेल से बना है-पट और कथा। पट का अर्थ पर्दा और कथा का अर्थ कहानी होता है। अर्थात् ऐसी कथा जो पर्दे पर दिखाई जाए, चाहे वह पर्दा बड़ा हो या छोटा अर्थात् सिनेमा और टेलीविजन दोनों ही माध्यमों के लिए बनने वाली फ़िल्मों, धारावाहिकों आदि का मूलाधार पटकथा ही होती है। कथा-साहित्य पर फ़िल्म या धारावाहिक बनने की परंपरा काफ़ी पुरानी है। अभी कुछ वर्ष पूर्व शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के प्रसिद्ध उपन्यास 'देवदास' को हिंदी में तीसरी बार फिल्माया गया। इसके अलावा हिंदी के कई जाने-माने लेखक- प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, शंकर शेष, मन्नू भंडारी, काशीनाथ सिंह आदि की अनेक रचनाओं को समय-समय पर पर्दे पर उतारा गया है जैसे- उसने कहा था, गोदान, चित्रलेखा, तीसरी कसम, घरौंदा, सारा आकाश, डाकबंगला, रजनीगंधा, नदिया के पार, पिंजर, मोहल्ला अस्सी आदि हैं। मेरे पीएच.डी. शोध प्रबंध का विषय "हिंदी साहित्यिक कृतियों पर आधारित सिनेमाई पटकथाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन" है। यह शोध कार्य विषय के प्रति एक नवीन दृष्टि को उद्घाटित करने में सक्षम है साथ ही विषय की प्रामाणिकता व उपयोगिता भी सिद्ध करता है। ज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है जिससे मनुष्य और समाज दोनों की विकास यात्रा समृद्ध होती है।

विषय सूची

1. हिन्दी ललित निबन्ध का उद्भव और विकास 2. हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में सौंदर्य – बोध 3. हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में परम्परा और आधुनिकता 4. हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में सांस्कृतिक चिंतन 5 हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्धों की भाषा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची ।

25. दीपाक्षी

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में उपस्थित स्त्री पात्रों का अस्तित्ववादी और आधुनिकतावादी संदर्भ।

निर्देशिका : प्रो. रेनु अरोड़ा

Th 29061

सारांश

स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों में निर्मल वर्मा अपने कथ्य, शिल्प तथा रचनात्मक विविधता के कारण प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं। उनमें कथा लिखने की विलक्षण प्रतिभा तथा बौद्धिकता दिखाई देती है। उन्होंने लीक से हटकर हिंदी कथा क्षेत्र में विभिन्न प्रयोग किए, उनके विषय एवं पात्र हिंदी कथा साहित्य में अद्वितीय हैं। निर्मल वर्मा के कथा संसार का फलक इतना विस्तृत तथा विविधता पूर्ण रहा कि एक बार संपर्क में आने के उपरांत पाठकों का जादुई सम्मोहन से बचकर निकल पाना आसान नहीं होता है। उनका कथा साहित्य स्त्री मन की संवेदनाओं को बेहद बारीकी से परत दर परत खोलता है। उन्होंने संवेदना के धागों से जिस प्रकार अपनी कहानियों व उपन्यासों की चादर बुनी, वह कथा के क्षेत्र में एक नवीन प्रयास था। निर्मल वर्मा के समूचे कथा साहित्य में स्त्री पात्रों की प्रमुख भूमिका देखी जाती है। उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत में अपने स्त्री पात्रों द्वारा समकालीन पीढ़ी की परिवर्तित होती धारणाओं, बदलते मूल्यों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त किया। वे अपने कथा साहित्य में उच्च मध्यवर्गीय स्त्री को चित्रित करते हैं। उनके स्त्री पात्र आधुनिक समाज में जी रहे पात्र हैं, जिनकी जीवन शैली तथा सोच आधुनिक है। उनमें व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की प्रधानता दिखाई देती है। वे आदर्श, नैतिकता, परंपरागत संस्कारों के बंधन, समाज में प्रचलित रूढ़ियों से मुक्त दिखाई देती हैं तथा उनके भीतर कर्तव्य भावना का अभाव देखने को मिलता है, कर्तव्य भावना के वशीभूत होकर उन्हें संबंधों को निभाना सार्थक नहीं लगता है। निर्मल वर्मा ने अपनी स्त्री को दोहरेपन से मुक्त रखा है। उनका चरित्र जैसा है, उस रूप में ही पाठकों के समक्ष आता है। वे जो भीतर है, उसी रूप में बाहर भी। उनकी नायिकाओं को न शराब से परहेज है, न पबों में जाने से, न काम इच्छाओं को तृप्त करने के लिए किसी अन्य पुरुष से शारीरिक संबंध बनाने से।

विषय सूची

निर्मल वर्मा का कथा साहित्य : अस्तित्ववादी संदर्भ में 2. निर्मल वर्मा और आधुनिकतावाद 3. हिन्दी कथा साहित्य : स्त्री का बदलता स्वरूप 4. निर्मल वर्मा के स्त्री पात्र : एक अवलोकन 5 निर्मल वर्मा के कथा साहित्य की कलात्मक बुनावट। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

26. दीक्षित (कु मोहिनी)

भक्तिकालीन रामकाव्य में कथानक रूढ़ियाँ एवं कवि- प्रसिद्धियाँ ।

निर्देशिका : प्रो. ज्योत्सना आंनद एवं प्रो. पूरनचंद टंडन एवं प्रो. कुमुद शर्मा

Th 29060

सारांश

'भक्तिकालीन रामकाव्य में कथानक-रूढ़ियाँ एवं कवि-प्रसिद्धियाँ' हिंदी साहित्य के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण और सार्थक शोध-विषय है। भक्तिकालीन साहित्य में रामकथा केवल धार्मिक आस्था की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना का सशक्त माध्यम भी है। इस काल में रामकथा पर आधारित अनेक काव्यरचनाएँ हुईं, जिनमें परंपरागत कथानक-रूढ़ियों के साथ-साथ कवियों की विशिष्ट काव्य-प्रतिभा और भक्ति-दृष्टि का समन्वय दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य इन्हीं कथानक-रूढ़ियों तथा कवि-प्रसिद्धियों का सूक्ष्म और विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। भक्तिकालीन रामकाव्य में राम-जन्म, वनगमन, सीता-हरण, युद्ध और राज्याभिषेक जैसे कथानक-प्रसंग प्रायः संस्कृत साहित्य, विशेषतः वाल्मीकि रामायण और पुराण-परंपरा से प्राप्त हुए हैं। ये प्रसंग विभिन्न कवियों द्वारा बार-बार ग्रहण किए गए, किंतु प्रत्येक कवि ने अपनी भक्ति-भावना, दार्शनिक दृष्टि और सामाजिक अनुभव के अनुसार इन्हें नवीन अर्थ, भाव और संवेदना प्रदान की। इस

प्रकार कथानक-रूढ़ियाँ जड़ न रहकर सजीव, गतिशील और परिवर्तनशील स्वरूप ग्रहण करती हैं। कवि-प्रसिद्धियाँ भक्तिकालीन रामकाव्य की एक प्रमुख विशेषता हैं। तुलसीदास की मर्यादा-भावना, दास्य-भक्ति और लोकमंगल की चेतना उनकी रचनाओं को विशिष्ट पहचान प्रदान करती है। वहीं अन्य रामकाव्यकारों की भावुकता, वर्णनात्मक शैली और भक्ति-प्रधान दृष्टिकोण भी उनकी काव्य-विशेषताओं के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये कवि-प्रसिद्धियाँ केवल काव्य-शैली तक सीमित न होकर कवियों के वैचारिक दृष्टिकोण और सामाजिक सरोकारों से भी गहराई से जुड़ी हुई हैं। यह शोध संस्कृत साहित्य से लेकर हिंदी भक्तिकाल तक रामकथा की कथानक-परंपरा की निरंतरता, विकास और रूपांतरण को समझने में सहायक सिद्ध होगा तथा हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक विकास-क्रम को स्पष्ट करने में एक महत्त्वपूर्ण और मौलिक योगदान देगा। इस अध्ययन से रामकाव्य की परंपरा, भक्ति-संवेदना, लोकभाषा की शक्ति तथा कथानक-विकास की प्रवृत्तियों को समग्र रूप में समझने का अवसर प्राप्त होगा। और शोधार्थियों के लिए यह विषय दिशानिर्देशक सिद्ध होगा भविष्य में।

विषय सूची

1. कथानक रूढ़ियां एवं कवि-प्रसिद्धियों की सैद्धांतिक अवधारणा 2. भक्तिकालीन रामकाव्य की अवधारणा : अभिप्राय एवं स्वरूप 3. भक्तिकालीन रामकाव्य में प्रयुक्त लोक आधृत कथानक रूढ़ियां एवं कवि-प्रसिद्धियां 4. भक्तिकालीन रामकाव्य में प्रयुक्त प्रेम-आधृत कथानक रूढ़ियां एवं कवि प्रसिद्धियां 5 भक्तिकालीन रामकाव्य में प्रयुक्त रोमांच आधृत कथानक रूढ़ियां एवं कवि प्रसिद्धियां। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

27. प्रकाश

राही मासूम रज़ा और अब्दुल्लाह हुसैन के उपन्यासों में नेरेशन तथा कथ्य का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. अनिल कुमार राय

Th 29064

सारांश

राही मासूम रज़ा और अब्दुल्लाह हुसैन के उपन्यासों में नेरेशन तथा कथ्य का तुलनात्मक अध्ययन केवल साहित्यिक तुलना भर नहीं है। यह समाज के उस दर्द को समझने का प्रयास है, जिसे हमने इतिहास के किसी कोने में छिपा दिया है। यह हमें यह समझने में मदद करता है कि साहित्य किस प्रकार समाज का दर्पण बन सकता है और लेखक समय के प्रवाह में सच को कैसे पकड़ सकते हैं। जब राजनीति झूठ बोले, इतिहास मौन हो जाए और समाज चुप हो जाए, तब साहित्य ही वह आवाज बनता है जो लोगों तक सच्चाई पहुँचाता है। राही मासूम रज़ा और अब्दुल्लाह हुसैन ने इस भूमिका को बखूबी निभाया है। नेरेशन यानी कथा कहने की शैली यह तय करती है कि लेखक अपने पाठक से कैसे संवाद करता है, कथा को कैसे आगे बढ़ाता है और भावनाओं को किस प्रकार प्रस्तुत करता है। राही मासूम रज़ा की नेरेशन शैली बहुत ही जीवंत, सरल और स्थानीय भाषा से भरी हुई है। वे अपने पात्रों को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वे बिलकुल असली लगते हैं। उनकी भाषा में आम लोगों की बोलचाल, गालियाँ, मुहावरे, ताने और गाँव की महक होती है। उनके उपन्यासों में पाठक को ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह स्वयं उस कथा का हिस्सा हो। पाठक उन गलियों में घूमता है, उन पात्रों से बात करता है और उनके साथ जीता है। यह शैली पाठक को भावनात्मक रूप से जोड़ देती है और वह पात्रों के दु:ख-सुख को महसूस करने लगता है।उनका नेरेशन भावनात्मक और आत्मीय होता है। वे कहानी सुनाने की बजाय कहानी को जीते हैं, और पाठक को भी उसी अनुभव में शामिल कर लेते हैं।

विषय सूची

1.सांप्रदायिकता एवं विभाजन की त्रासदी : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 2. राही मासूम रज़ा का परिचय और उनका औपन्यासिक संसार 3. अब्दुल्लाह हुसैन का परिचय और उनका औपन्यासिक संसार 4. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में नेरेशन एवं कथ्य 5 अब्दुल्लाह उपन्यासों में नेरेशन एवंत तथ्य 6. राही मासूम रज़ा और अब्दुल्लाह हुसैन के उपन्यासों में नेरेशन तथा कथ्य का तुलनात्मक अध्ययन। उपसंहार। आधार ग्रंथ सूची।

28. पियूष पुष्पम

हिंदी नाटकों के विकास में रेडियो नाटकों की भूमिका का अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. श्यौराज सिंह

Th 29304

सारांश

हिंदी रंगमंच का स्वरूप अपने समय के साथ लगातार परिवर्तित होते हुए आज भी अपने वर्तमान में सशक्त रूप में उपस्थित है। इसका मतलब है कि आगे भी इसकी यात्रा बाधित होने वाली नहीं है। किसी भी चीज के निरंतर प्रवाह में उतार-चढ़ाव आता है, उसकी गति कभी तेज तो कभी धीमी होती है। नयी अनुभूतियाँ, नयी शैलियाँ और नयी कल्पनाएँ उसकी समय सापेक्षता को कायम रखती है। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं उपन्यास, कहानी, निबंध, संस्मरण, लेख, आलेख, रिपोर्ताज, यात्रावृतांत, आत्मकथा, जीवनी, डायरी आदि संस्कृत साहित्य की परंपरा से बहुत कम ग्रहण किए हैं जबकि कविता और नाटक सीधे उसके विकास-क्रम में पड़ते हैं। भरतमुनि, जिन्हें नाट्यशास्त्र का प्रणेता के रूप में हम सभी जानते हैं, से लेकर भारतेन्दु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद के समय तक के लगभग सभी नाटककारों में व उनके बाद के भी कुछ नाटककारों के नाटकों में कुछ हद तक संस्कृत का प्रभाव साफ-साफ दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समय में लगभग सभी लोग संस्कृत की नाट्य-प्रणाली से बहुत कुछ प्रभावित रहे थे और यहाँ तक कि जयशंकर प्रसाद के नाटकों पर भी संस्कृत नाटकों के काव्यात्मकता की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। प्रसाद के बाद के नाटककारों पर भी संस्कृत-नाटकों की परछाई देखी जा सकती है। विषय की दृष्टि से जितने व्यापक विषय को रेडियो नाटकों में प्रस्तुत किया जा सकता है उतने व्यापक विषय को एकांकियों में नहीं उपस्थित किया जा सकता है। रंगमंच पर आंगिक अभिनय का प्राधान्य होता है, नृत्य का समावेश करके कई नाटक सरस बनाये जाते हैं। रेडियो-नाटक में इन साधनों का नितांत अभाव होता है, अतएव इनके द्वारा उत्पन्न प्रभाव की पूर्ति ध्वनि के साधनों द्वारा ही करनी पड़ती है। दूसरा अंतर यह है कि रंगमंचीय एकांकी नाटकों को कार्य, काल और स्थान की इकाई संकलन त्रय का भी बंधन किसी न किसी मात्रा में मानना ही पड़ता है, किंतु रेडियो-नाटक इन बंधनों से नितांत मुक्त हैं, अतएव इन दोनों प्रकार के नाटकों में मौलिक अंतर स्वाभाविक है। तीसरी बात यह है कि जो स्वगत कथन अथवा स्वप्न संभाषण रंगमंच पर अस्वाभाविक प्रतीत होता है, वह रेडियो पर स्वाभाविक बन जाता है। अतएव रेडियो नाटक में किसी व्यक्ति के हृदयगत भावों को प्रकट करने में सुविधा हो जाती है। चौथा और सबसे बड़ा अंतर यह है कि रेडियो-नाटक का प्राण संवाद-योजना है, किंतु रंगमंचीय नाटक का आवश्यक अंग क्रियाशीलता है। पाँचवा अंतर यह है कि रंगमंच पर नाटकीय पात्रों के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रवेश वर्जित है, नाटक की संपूर्ण घटनाएँ पात्रों के संभाषण तथा क्रियाकलाप द्वारा प्रकट की जाती है, किंतु रेडियो-रूपक में `कथाकार` नामक एक व्यक्ति वर्णन के द्वारा पूर्वापर घटनाओं को संयुक्त करता चलता है। रेडियो-नाटक इस युग का नितांत अभिनव आविष्कार है। दुनिया में सर्वप्रथम रेडियो 1906 में आया और भारत में यह 1923 में पहुंचा। रेडियो और रेडियो-नाटक हिंदी साहित्य और रंगमंच में पश्चिम की देन है। हमारे देश पर भी पश्चिम के

नाटकों का जो प्रभाव पड़ा है, उनके अनुसार रेडियो-नाटक के मुख्य भेद हो सकते हैं : रेडियो नाटक, रेडियो अतिकल्पना या फैंटेसी, एकपात्री-नाटक या मोनोलॉग, झलकी या प्रहसन, धारावाहिक रेडियो-नाटक, रेडियो-कार्टून, काव्य-नाटक, रेडियो-रूपक।

विषय सूची

1. रेडियो नाटक की अवधारणा और स्वरूप 2. हिन्दी रेडियो नाटक के प्रकार 3. हिन्दी रेडियो-नाटकों में अभिव्यक्त विषय एवं सरोकार 4. रेडियो-नाटक परिवेश और पृष्ठभूमि 5 हिन्दी रेडियो-नाटकों का शिल्प पक्ष। संदर्भ ग्रंथ सूची। उपसंहार।

29. पूजा

हिंदी के कबीर विषयक नाटकों में अभिव्यक्त हाशिये का समाज ।

निर्देशक : प्रो. प्रदीप कुमार

Th 29063

सारांश

'हिंदी के कबीर विषयक नाटकों में अभिव्यक्त हाशिये का समाज' शोध विषय के अंतर्गत साहित्य की नाट्य विधा के महत्त्व, उद्देश्य तथा प्रभाव का अध्ययन किया गया। नाटक सार्ववर्णिक विधा होने के कारण समाज के प्रत्येक मानव से जुड़ती है। मध्यकालीन संत कवि कबीरदास के निर्भीक, सत्यान्वेषी तथा प्रख्यात व्यक्तित्व से प्रेरित होकर आधुनिक नाटककारों ने समकालीन संदर्भों में उनके संदेश को प्रसारित किया है। इन नाटकों के केंद्र में हाशिये के समाज जिनमें मुख्यत: दलित, महिलाएँ, आदिवासी, अल्पसंख्यकों, दिव्यांगजन, मज़दूर, किसान, वृद्ध आदि को सम्मिलित किया गया है। कबीर की वाणी के आलोक में मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखना तथा समतामूलक समाज का निर्माण कबीर विषयक संदर्भित नाटकों का मुख्य स्वर रहा है। इन नाटकों में उपेक्षित समाज की पीड़ा को गहराई से उभारा गया है तथा हाशिये के समाज की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समाज में विकृत हो रहे मानवीय मूल्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। श्रमसम्मत समाज की दयनीय स्थिति का चित्रण इन नाटकों में मिलता है। विभिन्न सामाजिक विसंगतियों, कुरीतियों तथा विद्रूपताओं के विरुद्ध हाशिये के समाज का संघर्ष इन नाटकों में दर्शाया गया है। नाटकों की दलित सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचना, भाषा-शैली, सामाजिक यथार्थ तथा रंगमंचीय दृष्टि से चिंतन किया गया है। प्रस्तुत नाटकों में वर्तमान समाज में फैले धार्मिक पाखंड, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, अत्याचार, तुच्छ मानसिकता पर कड़ा प्रहार किया गया है। अतः कबीर विषयक नाटकों में 'कबीर', 'लोई', 'नीमा', 'रैदास' तथा अन्य पात्रों के माध्यम से समानता तथा स्वाभिमान का संदेश मिलता है।

विषय सूची

1. हिन्दी नाट्य साहित्यए हाशिये का समाज और उनके विविध आयाम 2. कबीर विषयक नाट्य-साहित्य एवं नाटककारों का दृष्टिकोण 3. कबीर विषयक नाटकों में अभिव्यक्त हाशिये का समाज एवं उसके विविध आयाम 4. कबीर विषयक नाटकों में अभिव्यक्त हाशिये का समाज एवं उभरते विमर्श 5 विषयक नाट्य साहित्य तथा सौदर्यशास्त्रीय अध्ययन। उपसंहार। साक्षात्कार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

30. मीणा (मनोज कुमार)
हिंदी आंचलिक उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (1950 से सन् 1970 तक के आंचलिक उपन्यास) ।
निर्देशक : प्रो. मंजू मुकुल कांबले
Th 29069

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का शीर्षक ''हिंदी आंचलिक उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (1950 से सन् 1970 तक के आंचलिक उपन्यास)" है। इस शोध-प्रबंध के अंतर्गत संपूर्ण शोध कार्य को 'हिंदी आंचलिक उपन्यासों की परम्परा', 'साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन', 'हिंदी आंचलिक उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन', 'हिंदी आंचलिक उपन्यासों में अस्मिता के प्रश्न' एवं 'हिंदी आंचलिक उपन्यासों की भाषिक संरचना और शिल्प' नामक पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। इस शोध-विषय पर शोध कार्य के लिए फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल', देवेंद्र सत्यार्थी के 'ब्रह्मपुत्र', नागार्जुन के 'वरुण के बेटे', रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर', गुलशेर खाँ शानी के 'काला जल', राही मासूम रजा के 'आधा गाँव', शिवप्रसाद सिंह के 'अलग-अलग वैतरणी', श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी' एवं राजेंद्र अवस्थी के 'जाने कितनी आँखें' नामक आंचलिक उपन्यासों को आधार ग्रंथों के रूप में चयनित किया गया है। हिंदी आंचलिक उपन्यासों का समाज के सभी समाजशास्त्रीय मानकों, आधारों, पहलुओं एवं पैमानों के आधार पर समाजशास्त्रीय अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि इन हिंदी आंचलिक उपन्यासों में एक अंचल विशेष के माध्यम से संपूर्ण भारत की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक समस्याओं, विसंगतियों एवं वास्तविकताओं का गंभीर एवं संपूर्ण आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया गया है। हिंदी आंचलिक उपन्यासों के समाजशास्त्रीय अध्ययन के परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि इन आंचलिक उपन्यासों में भारत के सबसे प्रभावी एवं सबसे ज्वलंत मुद्दों जैसे भारतीय स्वतंत्रता के निहितार्थ, दलित, आदिवासी एवं अन्य वंचित समुदायों की राष्ट्रीय संसाधनों में हिस्सेदारी, स्त्रियों की वास्तविक स्थिति, अल्पसंख्यक समुदायों की वास्तविक स्थिति एवं आकांक्षाएँ, जाति एवं जमीन के सवाल आदि का गहन आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध के अंतर्गत हिंदी आंचलिक उपन्यासों की लोकभाषा के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के साथ-साथ हिंदी आंचलिक उपन्यासों के शिल्प का लोकतात्त्विक विवेचन भी किया गया है।

विषय सूची

1. हिन्दी आंचलिक उपन्यासों की परम्परा 2. साहित्य का समजशास्त्रीय अध्ययन 3. हिन्दी आंचलिक उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन 4. हिन्दी आंचलिक उपन्यासों में अस्मिता के प्रश्न 5 हिन्दी आंचलिक उपन्यासों की भाषिक संरचना और शिल्प। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

31. मीना (राजेश)
हिंदी आदिवासी कविता में अभिव्यक्त आदिवासी समाज (21वीं सदी के विशेष संदर्भ में) ।
निर्देशक : प्रो. छोटू राम मीना
Th 29305

सारांश

मैंने अपने शोध विषय में आदिवासी शब्द को परिभाषित करते हुए उसके विभिन्न अर्थों को संज्ञान में रखते हुए स्वयं का विचार इस शब्द के संदर्भ में रखा है। आदिवासी कविता का मूल मर्म देखते हुए हुए उसके उद्भव एवं विकास को आदिमता एवं पुरखा साहित्य के माध्यम से देखने का प्रयास किया है। इन कविताओं में आदिवासी समाज का कैसा दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है इसे देखने का प्रयास किया गया हैं। आदिवासी साहित्य की मौखिक और वाचिक परंपरा को देखने का प्रयास किया गया हैं। शोध में आदिवासी जीवन, उनकी संवेदना, प्रकृति से संबंध तथा समकालीन परिस्थितियों में उनके संघर्ष को साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। अध्याय का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि आदिवासी समाज का जीवन जल, जंगल और जमीन से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है और इन्हीं के आधार पर उनकी संस्कृति तथा साहित्य का निर्माण होता है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी आदिवासी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। इसमें निजीकरण, बाजारवाद, तकनीक और मीडिया के प्रभाव के साथ-साथ आदिवासी कविता के मूल स्वर को स्पष्ट किया गया है। इस अध्याय में यह बताया गया है कि आधुनिक विकास की नीतियों ने आदिवासी समाज को सबसे अधिक प्रभावित किया है और उनकी कविता इन परिवर्तनों के विरुद्ध प्रतिरोध की आवाज बनकर उभरती है। शोध में हिंदी आदिवासी कविता में व्यक्त सामाजिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। इसमें आदिमता, प्रतिरोध, प्रेम और प्रकृति-केन्द्रित मानवीय मूल्य, पारिस्थितिकीय चेतना, सामूहिकता तथा श्रम की महत्ता को प्रमुख प्रवृत्तियों के रूप में रेखांकित किया गया है। अध्याय का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि आदिवासी कविता केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक अनुभव, सांस्कृतिक अस्मिता और अस्तित्व-संघर्ष का दस्तावेज है। शिल्प के धरातल पर **21**वीं सदी की आदिवासी कविता अत्यंत सहज लेकिन अर्थपूर्ण है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी द्विभाषिकता है। अधिकांश आदिवासी कवि अपनी मातृभाषा **(**संताली, मुंडारी, खड़िया, कुड़ुख आदि**)** और हिन्दी दोनों में रचनाएँ करते हैं, जिससे उनकी अभिव्यक्ति में मौलिकता और स्थानीय सौंदर्य बना रहता है।

विषय सूची

1. आदिवासी साहित्य समाज और संस्कृति 2. हिन्दी आदिवासी कविता का उद्भव और विकास 3. इक्कीसवीं सदी की प्रवृत्तियां और हिन्दी आदिवासी कविता 4. हिन्दी आदिवासी कविता में समाज की प्रमुख प्रवृत्तियां 5 हिन्दी आदिवासी कविता का विश्लेषण। उपसंहार। संदर्भसूची।

32. मिश्रा (रोहित)
मृदुला सिन्हा के उपन्यास और नारी : मनोविज्ञान ।
निर्देशक : प्रो. रसाल सिंह एवं शोभा कौर
Th 29068

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय "मृदुला सिन्हा के उपन्यास और नारी **:** मनोविज्ञान" है। प्रथम अध्याय **:** "मनोविश्लेषणवाद, मनोविज्ञान और नारी-मनोविज्ञान" में शोध का सैद्धान्तिक आधार निर्मित किया गया है। फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के माध्यम से चेतन, अर्धचेतन और अचेतन मन की संरचना तथा उनकी पारस्परिक क्रियाओं का विवेचन किया गया है। साहित्य को केवल बाह्य यथार्थ का प्रतिबिम्ब न मानकर अंतर्मन की सृजनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में स्थापित किया गया है। नारी-अनुभवों को समझने में मनोवैज्ञानिक दृष्टि की अनिवार्यता पर बल देते हुए संस्कृत और हिन्दी साहित्य में नारी-मनोविज्ञान की परंपरा का संकेत किया गया है। द्वितीय अध्याय **:** "समकालीन महिला

उपन्यास लेखन और मृदुला सिन्हा" में समकालीन महिला उपन्यासकारों की पृष्ठभूमि में उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया गया है। उनकी प्रमुख कृतियों, लोकधर्मी दृष्टि, सांस्कृतिक प्रतिबद्धता तथा परंपरा और आधुनिकता के संतुलन का विश्लेषण करते हुए उनकी विशिष्ट स्त्री-चेतना को रेखांकित किया गया है। यह प्रतिपादित किया गया कि उनका लेखन भारतीय सामाजिक संरचना से गहरे रूप में जुड़ा है। तृतीय अध्याय : "उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन" में उनके सामाजिक तथा पौराणिक उपन्यासों के माध्यम से स्त्री के आंतरिक संघर्षों का अध्ययन किया गया है। पारिवारिक संबंधों, आत्मसम्मान, कर्तव्यबोध और भावनात्मक द्वंद्वों का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत है। पौराणिक स्त्री-पात्रों की पुनर्व्याख्या द्वारा स्त्री-अनुभवों की कालातीत प्रासंगिकता सिद्ध की गई है। चतुर्थ अध्याय : "नारी-दृष्टि का दार्शनिक आधार" में उनकी दृष्टि को भारतीय सांस्कृतिक चिंतन, मानव मूल्यों और सामाजिक संतुलन से जोड़ा गया है। पंचम अध्याय : "सर्जनात्मकता का महत्त्व" में उनके साहित्य को भारतीय संस्कृति और आधुनिक सामाजिक यथार्थ के मध्य सेतु के रूप में मूल्यांकित किया गया है। निष्कर्षतः उनका लेखन संतुलित और संवेदनशील नारी-मनोविज्ञान का सशक्त दस्तावेज सिद्ध होता है।

विषय सूची

1. मनोविश्लेषणवाद, मनोविज्ञान और नारी मनोविज्ञान 2. समकालीन हिन्दी महिला उपन्यास लेखन और मृदुला सिन्हा 3. मृदुला सिन्हा के उपन्यास और नारी मनोविज्ञान 4. मृदुला सिन्हा की नारी दृष्टि और नारी मनोविज्ञान 5 मृदुला सिन्हा की सृजनाात्मकता : महत्व और प्रासंगिकता। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

33. याादव (मीनाक्षी)

मध्यकालीन संत काव्य में अस्मितामूलक स्वर ।

निर्देशक : डॉ. कुसुम नेहरा एवं प्रो. पूरनचंद टण्डन एवं अनिल राय

Th 29306

सारंश

हिंदी साहित्य का मध्यकाल जो स्वर्णयुग के नाम से भी जाना जाता है। उसमें भी आधुनिक में प्रचलित अस्मितामूलक विमर्श का स्वर सुनाई देता है। आज जो विमर्श(स्त्री विमर्श, दलित अस्मिता विमर्श, जातीय अस्मिता विमर्श, राष्ट्रिय अस्मिता विमर्श इत्यादि)के रूप में अपने चरम पर दिखाई दे रहे हैं ,उसके स्वर हमें मध्यकाल में संतों की वाणीयों में भी दिखाई देते हैं। आज वर्तमान में जिन विमर्शों ने मानवीय पहचान ने अपनी पहचान पर आए संकट के लिए विद्रोह तक करने के लिए तैयार दिखाई दे रहे हैं उसकी गूंज मध्यकाल में भी सुनाई देती है। विषय के माध्यम से संत कवियों की वाणियों में जो पहचान पर संकट की छटपटाहट और तड़प दिखाई देती है, उसकी खोज करना ही इस शोध कार्य का उद्देश्य रहा है।

विषय सूची

1. अस्मिता का अर्थ, स्वरूप और उत्पत्ति 2. मध्यकालीन संत काव्य का परिचय एवं परंपरा 3. मध्यकालीन संत साहित्रू युगीन पृष्ठभूमि 4. मध्यकालीन प्रमुख संत कवि और उनकी अस्मितामूलक दृष्टि 5. मध्यकालीन संत साहित्य और अस्मिता के आयाम 6. मध्यकालीन संत काव्य का भाषिक सौंदर्य। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

34. यादव (रंजीत कुमार)
हिंदी उपन्यासों का रंगमंचीय प्रयोग ।
निर्देशिका : प्रो. अल्पना मिश्रा
Th 29391

सारंश

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में हिंदी उपन्यास और रंगमंच के अंतर्संबंधों का बहुआयामी एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि साहित्य और रंगमंच का संबंध केवल अभिव्यक्ति के दो पृथक माध्यमों का संबंध नहीं है, बल्कि यह एक सतत् संवादात्मक प्रक्रिया है, जिसमें एक माध्यम दूसरे के भीतर प्रवेश कर उसके अर्थ-क्षेत्र का विस्तार करता है। इस शोध के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि उपन्यास जो मूलतः पाठकीय अनुभव पर आधारित विधा है, रंगमंच के माध्यम से सामूहिक एवं दृश्य-श्रव्य अनुभव में रूपांतरित होकर एक नवीन सांस्कृतिक आयाम प्राप्त करता है। इस अध्ययन की संरचना को पाँच अध्यायों में विन्यस्त करते हुए विषय के विभिन्न पक्षों को क्रमबद्ध रूप में उद्घाटित किया गया है। प्रथम अध्याय में नाट्य-रूपांतरण की संकल्पना, स्वरूप, आवश्यकता तथा उसके आधारभूत तत्त्वों का सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि नाट्य-रूपांतरण एक साधारण रूपांतरण न होकर पुनर्सृजन की प्रक्रिया है। द्वितीय अध्याय में साहित्य की विविध विधाओं काव्य, कहानी, उपन्यास तथा अन्य गद्य रूपों के रंगमंचीय रूपांतरण का विश्लेषण करते हुए यह रेखांकित किया गया कि प्रत्येक विधा अपने विशिष्ट गुणों के साथ मंच पर रूप ग्रहण करती है और उसके अनुरूप रूपांतरण की प्रक्रिया भी परिवर्तित होती है। तृतीय अध्याय में हिंदी उपन्यास के नाट्य-रूपांतरण के विविध आयामों की पड़ताल की गई, जिसमें यह स्थापित किया गया कि यह प्रक्रिया चयन, संक्षेपण और पुनर्संरचना के माध्यम से संचालित होती है तथा इसमें मूल रचना और उसके रूपांतरण के बीच एक सृजनात्मक अंतर्द्वंद्व विद्यमान रहता है। चतुर्थ अध्याय में रंगमंचीय प्रयोग की कसौटी पर उपन्यासों के रूपांतरण का परीक्षण करते हुए उसके व्यावहारिक, संरचनात्मक तथा तकनीकी पक्षों का विश्लेषण किया गया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि मंचीय प्रस्तुति एक बहुस्तरीय प्रक्रिया है, जिसमें प्रत्येक स्तर का अपना स्वतंत्र महत्व है। अंततः पंचम अध्याय में उपन्यास के रंगमंच की चुनौतियों, संभावनाओं तथा समकालीन संदर्भों में उसकी भूमिका का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया, जिसके माध्यम से यह निष्कर्ष सामने आया कि उपन्यास का रंगमंच हिंदी रंगमंच की विकासशील परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण और सशक्त आयाम बन चुका है।

विषय सूची

1. नाट्य रूपांतरण : संकल्पना और स्वरूप 2. नाट्य रूपांतरण : साहित्य के विविध विधाओं का मंचन 3. हिन्दी उपन्यास का नाट्य रूपांतरण विविध आयाम 4. रंगमंचीय प्रयोग की कसौटी और हिन्दी उपन्यास 5. उपन्यास का रंगमंच : चुनाऐतियाँ और संभावनाएं। उपसंहार। परिशिष्ट (साक्षात्कार अनुसूची)। परिशिष्ट (चित्र, फोटोग्रफ, दस्तावेज़ आदि)। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

35. यादव (विजय कुमार)
हिंदी यात्रा साहित्य की परम्परा और डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक ।
निर्देशक : प्रो. रामा
Th 29073

सारांश

यात्रा प्राचीन काल से मानव की यायावरी, सांस्कृतिक अन्वेषण तथा सामाजिक अवलोकन की अभिव्यक्ति रही है। हिंदी यात्रा साहित्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से शुरू होते हुए राहुल सांकृत्यायन की वैचारिक गहनता, अज्ञेय की आधुनिक संवेदना, काका कालेलकर की सौंदर्यबोधपूर्ण वर्णन शैली तथा अन्य लेखकों के माध्यम से यह विधा तीर्थाटन, पर्यटन, राष्ट्रवाद, पर्यावरण चेतना तथा अंतरसांस्कृतिक संवाद से समृद्ध हुई। समकालीन दौर में यात्रा वृत्तांत केवल भौतिक यात्रा का विवरण भर नहीं रह गया, अपितु वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की संवाहकता, सकारात्मक दृष्टि तथा सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ का माध्यम बन गया है। डॉ. रमेश पोखरियाल `निशंक` की यात्रा वृतांत हिंदी यात्रा साहित्य की परंपरा को समकालीन वैश्विक संदर्भ प्रदान करती है। यह शोध हिंदी यात्रा साहित्य की परंपरा का ऐतिहासिक विकास प्रस्तुत करते हुए डॉ. निशंक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ साथ उनके अफ्रीका, एशिया तथा यूरोप पर आधारित यात्रा वृतांतों का गहन विश्लेषण करता है। डॉ. निशंक की अफ्रीकी यात्रा वृतांत युगांडा एवं मॉरीशस जैसे देशों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को भारतीय दृष्टिकोण से उजागर करती है। वहाँ की प्राकृतिक समृद्धि, विविध जनजातीय संस्कृति, भारतीय प्रवासी समुदाय की उपस्थिति तथा विकास की चुनौतियों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। मॉरीशस में गिरमिटिया भारतीयों की सांस्कृतिक निरंतरता, बहुसांस्कृतिक समाज, त्योहारों-परंपराओं की जीवंतता तथा आर्थिक प्रगति को सकारात्मक रूप से दर्शाया गया है। एशियाई यात्रा साहित्य में डॉ. निशंक ने इंडोनेशिया में रामायण-महाभारत परंपरा की जीवंतता, कुंभ जैसी आस्था तथा बहुसंख्यक मुस्लिम समाज में भारतीय संस्कृति की गहन पैठ को चित्रित किया है। नेपाल में हिमालयी सांस्कृतिक साझेदारी एवं धार्मिक निकटता, थाईलैंड में बौद्ध प्रभाव एवं आधुनिक पर्यटन का संतुलन, तथा भूटान में `ग्रॉस नेशनल हैप्पीनेस` की अवधारणा, पर्यावरण संरक्षण एवं परंपरा-आधुनिकता के सामंजस्य को भावपूर्ण ढंग से उकेरा गया है। ये रचनाएँ एशियाई संदर्भ में भारतीय संस्कृति की संवाहकता एवं सुख-समृद्धि की साझा खोज को रेखांकित करती हैं। यूरोपीय यात्रा वृतांत में डॉ. निशंक यूरोप की सांस्कृतिक धरोहर, कला-परम्पराएं एवं आधुनिक जीवनशैली का तुलनात्मक अवलोकन प्रस्तुत करते हुए फ्रांस को यूरोप का सांस्कृतिक केंद्र मानते हैं तथा वहाँ की कला, इतिहास एवं सौंदर्यबोध को भारतीय संवेदना से जोड़ा कर देखते हैं। बेल्जियम में चॉकलेट संस्कृति एवं यूरोपीय जीवन की सूक्ष्म झलकियाँ, आस्ट्रिया एवं यूक्रेन में ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विविधता तथा समग्र यूरोपीय परिवेश में आधुनिकता बनाम परंपरा का द्वंद्व भारतीय दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। विधि के रूप में ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण, तुलनात्मक अध्ययन तथा पाठ-आधारित व्याख्या अपनाई गई है। निष्कर्षस्वरूप, लेखक की रचनाएँ हिंदी यात्रा साहित्य की परंपरा को वैश्विक स्तर पर सशक्त बनाती हैं, जहाँ यात्रा केवल दर्शन नहीं, अपितु संस्कृति के प्रसार, सांस्कृतिक संरक्षण तथा सकारात्मक वैश्विक संवाद का माध्यम बन जाती है। यह अध्ययन निशंक को इस परंपरा की एक महत्वपूर्ण समकालीन कड़ी के रूप में स्थापित करता है तथा पर्यटन, सांस्कृतिक जागरण एवं अंतरराष्ट्रीय संबंधों के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

विषय सूची

1. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 2 हिन्दी यात्रा साहित्य की परम्परा 3 डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के अफ्रीकी यात्रा साहित्य में चित्रित सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का विश्लेषण (युगांडा मॉरीशस) 4. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के एशियाई यात्रा साहित्य में चित्रित सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का विश्लेषण-(इंडोनेशिया, नेपाल, थाईलैंड, भूटान) 5 डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के यूरोपीय यात्रा साहित्य में चित्रित

सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का विश्लेषण (फ्रांस, यूक्रेन, आस्टिेलिया, बेल्जियम)। उपसंहार। डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का साक्षात्कार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

36. रजनी

हरियाणवी लोकगीतों में जीवन-मूल्य ।

निर्देशक : प्रो. नीरव अडालजा

Th 29074

सारांश

`मूल्य` शब्द का संबंध मूलतः आर्थिक क्षेत्र से है, लेकिन मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस शब्द का अपना महत्त्व है। जीवन के प्रत्येक पहलू को हम उपयोगिता की नजर से देखते हैं; चाहे वह धार्मिक हो, आर्थिक हो, राजनीतिक हो या सामाजिक, साहित्य भी इससे दूर नहीं। कोई भी रचना तभी उत्तम मानी जाती है, जब वह मानव जीवन से जुड़कर मानव कल्याण को लक्ष्य करती है। जीवन-मूल्य मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक दोनों प्रकार के व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं ताकि उसमें अराजकता न आने पाए। जीवन-मूल्य की संकल्पना मानवीय संवेदनाओं को जीवंतता प्रदान करती है। मानव की सहज प्रवृत्ति है कि उसे एक प्रतिमान मिल सके जिसका वह अनुसरण करे। इस संदर्भ में वेद, पुराण, इतिहास, दर्शन सभी का योगदान रहा है। भारतीय दृष्टि मूल्यों को चारों पुरुषार्थों से जोड़कर देखती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों ने ही मानव को जीने का मार्गदर्शन दिया है। जीवन-मूल्य मानव जीवन को समग्रता के साथ देखने की सकारात्मक दृष्टि है।

विषय सूची

जीवन - मूल्य : स्वरूप विवेचन 2. लोक साहित्य एवं लोक गीत 3. हरियाणवी लोकगीतों का वर्गीकरण और परिचय 4. हरियाणवी लोकगीतों में अभिव्यक्त जीवन-मूल्य 5 हरियाणवी लोकगीतों की जीवन-मूल्य व्यंजक भाषा-शैली। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

37. रक्षा

सूरदास और मीराबाई के कृष्णकाव्य में नारी का स्वरूप ।

निर्देशिका : प्रो. मंजु रानी

Th 29307

सारंश

सूरदास और मीरा बाई के कृष्ण काव्य का अध्ययन, यद्यपि प्रारंभ में पृथक-पृथक रूप से किया गया, किंतु दोनों कवियों के द्वारा रचित कृष्णकाव्य में नारी के स्वरूप का विश्लेषण करने से एक गहन आंतरिक एकता का उद्घाटन होता है। सूरदास ने जहाँ नारी को गोपियों और यशोदा जैसे स्त्री-पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, वहीं मीरा बाई ने स्वयं को नायिका बनाकर अपनी अनुभूतियों को स्वर दिया है। इस भिन्न प्रस्तुति के बावजूद, दोनों के काव्यों में नारी का भाव-संसार एक ही आध्यात्मिक धरातल पर स्थित प्रतीत होता है। दोनों कवियों के काव्य में नारी का मूल स्वरूप प्रेम, भक्ति और पूर्ण आत्मसमर्पण की त्रयी पर आधारित है। सूरदास की गोपियाँ सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हुए कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम में लीन हैं, तो मीरा की काव्य-नायिका व्यक्तिगत चेतना के स्तर पर उसी प्रेम और भक्ति को जीती हुई दिखाई देती है। इस प्रकार, अभिव्यक्ति के स्तर पर भिन्नता होते हुए भी, उनके काव्य का मूल भाव—कृष्ण के प्रति अखंड प्रेम और आध्यात्मिक अनुरक्ति—पूर्णतः समान है। यह समानता केवल विषयवस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि संवेदना की

गहराई और अनुभूति की तीव्रता में भी समान रूप से परिलक्षित होती है। दोनों ही काव्यों में नारी अपने आराध्य के प्रति ऐसी तन्मयता प्रदर्शित करती है, जिसमें लौकिक सीमाएँ लुप्त हो जाती हैं और अलौकिक प्रेम की अनुभूति प्रमुख हो उठती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो नारी यहाँ केवल एक पात्र नहीं, बल्कि भक्ति की सजीव अनुभूति का माध्यम बन जाती है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सूरदास और मीरा बाई के कृष्ण काव्य में नारी का स्वरूप, भिन्न अभिव्यक्तियों के बावजूद, अपने मूल तत्त्व में एकरूप और एकात्म है। यह शोध इसी तथ्य को स्थापित करने का प्रयास करता है कि चाहे नारी को बाह्य पात्र के रूप में चित्रित किया जाए या स्वयं के अनुभव के रूप में व्यक्त किया जाए, अंततः उसका केंद्र बिंदु एक ही रहता है—कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम, अटूट भक्ति और पूर्ण आत्मसमर्पण। यही समानात्मक तत्व इस अध्ययन की प्रमुख उपलब्धि है।

विषय सूची

1. भारतीय संस्कृति एवं नारी का स्वरूप 2. कृष्णकाव्य परंपरा में सूरदास एवं मीराबाई 3. सूरदास के कृष्णकाव्य में वर्णित नारी का स्वरूप 4. मीराबाई के काव्य में वर्णित नारी का स्वरूप 5. सूरदास एवं मीराबाई की नारी दृष्टिकोण 6.सूरदास एवं मीराबाई की काव्य भाषा। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

38. रॉक्सी

सामाजिक समरसता एवं जाम्भोजी का काव्य ।

निर्देशिका : डॉ. अर्चना त्रिपाठी

Th 29078

सारांश

जाम्भोजी के प्रति मेरी विशेष रुचि रही है क्योंकि जाम्भोजी बहुत ही विनम्रता से अपनी बात को अभिव्यक्त कर देते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आज के समय में विनम्र स्वभाव की अधिक आवश्यकता है क्योंकि आजकल बहुत छूती-छोटी बातों पर बहुत बड़े-बड़े दंगे हो जाते हैं। जाम्भोजी बहुत ही विनम्र स्वभाव से लोगों को सामाजिक समरसता का पाठ पढ़ाते हैं। मैने अपने इस शोध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय में सामाजिक समरसता का अर्थ, सामाजिक समरसता का महत्त्व एवं सामाजिक समरसता और साहित्य को दर्शाया गया है। द्वितीय अध्याय में जाम्भोजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को दर्शाया गया है। तृतीय अध्याय में भक्तियुगीन काव्य का परिक्षेत्र, भक्तियुगीन काव्य में सामाजिक समरसता एवं सामाजिक समरसता की विविध ध्वनियाँ, जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, एवं मीरा पर बात की गई है। चतुर्थ अध्याय में जाम्भोजी के काव्य में सामाजिक समरसता का स्वरूप, जाम्भोजी के काव्य में पर्यावरण चिंतन तथा जाम्भोजी के काव्य में सामाजिक समरसता के वैशिष्ट्य को दर्शाया गया है। पंचम अध्याय में सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य एवं जाम्भोजी की प्रासंगिकता को दर्शाया गया है। अतः जाम्भोजी के काव्य में मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी, जानवर और प्रकृति के प्रति भी प्रेम और चिंतन देखने को मिलता है।

विषय सूची

1. सामाजिक समरसता स्वरूप 2. जाम्भोजी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 3. सामाजिक समरसता और भक्तियुगीन काव्य 4. सामाजिक समरसता एवं जाम्भोजी का काव्य 5 सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य एवं जाम्भोजी की प्रासंगिकता। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

39. विजेता लक्ष्मी

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथाकारों द्वारा वर्णित रामकथा के नए आयाम ।

निर्देशिका : प्रो. हर्षबाला शर्मा

Th 29080

सारांश

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में रामकथा ने नितांत नवीन आयाम प्राप्त किए हैं। वैदिक काल से प्रवाहमान यह कथा-परंपरा प्रत्येक युग में समकालीन संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित होती रही है। अट्ठाईस रामकथा आधारित उपन्यासों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि इन रचनाकारों ने परंपरागत आख्यान को आधुनिक वैज्ञानिक चेतना और तर्कसंगत दृष्टि से पुनर्व्याख्यायित किया है। सामाजिक स्तर पर वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध इन उपन्यासों की सर्वाधिक प्रासंगिक विशेषता है। शंबूक जैसे उपेक्षित पात्रों को अधिकार-सचेत और मुखर व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत कर दलित विमर्श को नई दिशा दी गई है। नारी विमर्श के संदर्भ में कैकेयी, उर्मिला, अहल्या और शूर्पणखा जैसे पात्रों का क्रांतिकारी पुनर्मूल्यांकन किया गया है, जहाँ उन्हें स्वतंत्र, सशक्त और निर्णयक्षम व्यक्तित्व के रूप में स्थापित किया गया है। राजनीतिक चेतना की दृष्टि से भ्रष्टाचार, निरंकुशता और लोकतांत्रिक मूल्यों की अवहेलना को रामकथा के माध्यम से प्रभावी ढंग से उद्घाटित किया गया है। चारित्रिक पुनर्मूल्यांकन के अंतर्गत रावण, कुंभकर्ण और मेघनाद जैसे प्रतिनायकों में भी मानवीय संवेदनाओं, ज्ञान और सकारात्मक गुणों को रेखांकित कर बहुआयामी व्यक्तित्व प्रस्तुत किए गए हैं। शिल्प की दृष्टि से मिथकीय, आत्मकथात्मक, पूर्वदीप्ति और व्यंग्यात्मक शैलियों का सफल निर्वाह हुआ है। संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली में मुहावरों, लोकोक्तियों और अलंकारों के प्रयोग से भाषा को काव्यात्मक एवं प्रभावशाली बनाया गया है। अंततः इन उपन्यासों ने सिद्ध किया है कि रामकथा एक जीवंत और लचीला ढाँचा है जो निरंतर नवीन अर्थों को जन्म देती है। परंपरा और आधुनिकता के सामंजस्य से रचित ये उपन्यास भारतीय साहित्य की उस महान परंपरा के सच्चे उत्तराधिकारी हैं जो परिवर्तन में निरंतरता और निरंतरता में परिवर्तन देखती है।

विषय सूची

1. रामकथा की परंपरा स्वरूप एवं विशिष्टाएं, इतिहास 2. सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन : रामकथा का विकास 3. आधुनिककालीन हिन्दी साहित्य में रामकथा 4. स्वांतत्रयोत्तर हिन्दी कथाकारों द्वारा वर्णित रामकथा 5 स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी कथाकारों द्वारा रचित रामकथा का शिल्पगत वैशिष्ट्य। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

40. श्रुति

पिछले दो दशक के हिंदी उपन्यासों में पानी और पर्यावरण का प्रश्न ।

निर्देशक : प्रो. रामनारायण पटेल एवं प्रो. मोहन

Th 29096

सारांश

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को केवल भौतिक संसाधन के रूप में नहीं, बल्कि पूजनीय और जीवनदायी तत्व के रूप में देखा गया है। सूर्य, जल, अग्नि, चन्द्र तथा वनस्पति जैसे प्राकृतिक अवयवों

को देवतुल्य मानकर उनकी उपासना की परंपरा वस्तुतः पर्यावरण संरक्षण की सांस्कृतिक चेतना को प्रतिबिंबित करती है। यह दृष्टि मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलित सहअस्तित्व की अवधारणा को स्थापित करती है। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों तथा इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में तीव्र औद्योगीकरण, मशीनों के अत्यधिक प्रयोग और उपभोक्तावादी संस्कृति के विस्तार ने वैश्विक स्तर पर गंभीर पर्यावरणीय असंतुलन को जन्म दिया। इसके परिणामस्वरूप जल संकट, प्रदूषण, असमानता और घातक रोगों जैसी समस्याएँ मानव जीवन के समक्ष गहरी चुनौती बनकर उभरी हैं। प्रकृति के शोषण ने समाज में अमीर-गरीब की खाई को और चौड़ा किया है तथा स्वस्थ जीवन के अधिकार को प्रभावित किया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय- "पिछले दो दशक के हिंदी उपन्यासों में पानी और पर्यावरण का प्रश्न" है । इसमें इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों के माध्यम से पर्यावरणीय संकट और उसके सामाजिक संदर्भों का विश्लेषण किया गया है। शोध का उद्देश्य साहित्य में जल, पर्यावरण और मानवीय संवेदनाओं के आपसी संबंध को रेखांकित करना है। इस अध्ययन में विश्लेषणात्मक पद्धति अपनाई गई है, जिसके माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि समकालीन हिंदी उपन्यास पर्यावरणीय चेतना को न केवल अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि आधुनिक विकास मॉडल पर गंभीर प्रश्न भी उठाते हैं। अंततः यह शोध निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि वृक्षारोपण, कूड़ा-प्रबंधन, सौर ऊर्जा को प्राथमिकता,वर्षा जल संचयन, प्रशासनिक उपायों तथा जन-जागरूकता पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यंत आवश्यक है ।

विषय सूची

1. प्राकृतिक संसाधन और पर्यावरण 2. पानी और पर्यावरण अर्थ–संदर्भ एवं स्वरूप 3. 20वीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यास : पर्यावरण और सामाजिक संदर्भ 4. 21वीं सदी के उपन्यासः जल संकट का संदर्भ 5 21वीं सदी उपन्यास : पर्यावरणीय चिंतन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

41. शर्मा (ललिता)
मध्यकालीन लोकनाट्य परंपरा : विशेष संदर्भ रामलीला और रासलीला ।
निर्देशक : डॉ. आलोक रंजन पाण्डेय एवं डॉ. पूरन चंद टण्डन
Th 29308

सारांश

भारतीय लोकनाट्य परंपरा भारतीय सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक आस्था और सामूहिक लोकजीवन की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। इसकी जड़ें लोकानुभूति, मौखिक परंपरा और अनुष्ठानिक क्रियाओं में निहित हैं। मध्यकाल में यह परंपरा विशेष रूप से रामलीला और रासलीला के रूप में विकसित हुई, जिनमें भक्ति, नाट्य और लोकसंस्कृति का सजीव समन्वय दृष्टिगोचर होता है। लोक का पारिभाषिक अर्थ समाज के उस व्यापक वर्ग से जुड़ा है जो अपनी सांस्कृतिक स्मृति और परंपराओं को गीत, कथा और अभिनय के माध्यम से संप्रेषित करता है। इसी से लोकसाहित्य और लोकनाट्य का उद्भव हुआ। भारतीय लोकनाट्य शास्त्रीय नाट्य से भिन्न होते हुए भी उससे पूर्णतः असंबद्ध नहीं है। जहाँ शास्त्रीय नाट्य संस्कृत, नियत मंच और नाट्यशास्त्रीय नियमों पर आधारित है, वहीं लोकनाट्य जनभाषा, खुले मंच, सामूहिक सहभागिता और तात्कालिक भावाभिव्यक्ति पर आधारित है। धार्मिक तथा विनोदधर्मी लोकनाट्य रूपों ने लोकमानस को नैतिक शिक्षा और मनोरंजन दोनों प्रदान किए। भक्ति परंपरा में लीला की अवधारणा विशेष महत्व रखती है। लीला को ब्रह्म की सृजनात्मक और आनन्दात्मक अभिव्यक्ति माना गया है, जो अवतारवाद की अवधारणा से जुड़ी है। वैदिक युग से भक्ति युग तक विष्णु-नारायण के अवतारों का विकास हुआ, जिसमें राम और कृष्ण को 'लीलापुरुषोत्तम' के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इन्हीं लीलाओं का नाट्यात्मक रूप रामलीला और

रासलीला में दृष्टिगोचर होता है। मध्यकालीन रामलीला और रासलीला लोकनाट्य के सशक्त रूप हैं। रासलीला में नृत्य, संगीत और भावात्मक अभिव्यक्ति की प्रधानता है, जबकि रामलीला में कथा, संवाद और नैतिक आदर्शों का विस्तार मिलता है। यह अध्ययन मध्यकालीन लोकनाट्य की परंपरा, उसके विकास और सांस्कृतिक महत्व को समझने का प्रयास है।

विषय सूची

भारतीय लोकनाट्य स्वरूप पंपरा और विकास 2. भारतीय भक्ति परंपरा में लीला और अवतारणवाद 3. भारतीय मध्यकालीन लोकनाट्य परंपरा का स्वरूप 4. रासलीलाः उद्भवभव, विकास और नाट्य स्वरूप 5. रासलीलाः उद्भवभव, विकास और नाट्य परंपरा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

42. शर्मा (सिमरन)

ब्रिटेन के कथा-साहित्य में प्रवासी जीवन (विशेष संदर्भ - तेजेंद्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना , ज़किया जुबैरी, नीना पाल, उषा वर्मा, अरुणा सब्बरवाल) ।

निर्देशक : प्रो. अनिल राय

Th 29309

सारांश

साहित्य देश, काल और सामाजिक परिस्थिति का द्योतक होता है। साहित्य में मानवीय संवेदनाओं को प्रस्तुत करने की सृजनशीलता होती है। रचनात्मक तरीके से यथार्थ बोध का प्रकटीकरण ही कथा साहित्य कहलाता है। मेरा शोध प्रवासी कथा साहित्य में ब्रिटेन और भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक, मानवीय जीवन मूल्यों के केन्द्रबिन्दु पर है। राष्ट्र, समाज, संस्कृति और मानवीय मूल्यों के प्रतिमानों में कुछ हद तक ब्रिटेन सुदृढ़ है, तो बहुत हद तक भारत। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी मूलभूत संरचना होती है जिस पर वो टिका होता है।शोध 'ब्रिटेन के कथा साहित्य में प्रवासी जीवन' में विशेष रूप से मुख्य प्रवासी साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, ज़किया ज़ुबेरी, नीना पाल, उषा वर्मा एवं अरुणा सब्बरवाल के कथा साहित्य का विश्लेषण कर प्रवासी जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों के अन्तर्द्वन्द्व को समझने का एक सार्थक प्रयास किया है,जो चार अध्यायों के माध्यम से भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से दृष्टिपात किया गया है। शोध को अधिक सुबोध, तार्किक एवं क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से कुल चार अध्यायों में विन्यस्त किया गया है.अध्याय एक 'ब्रिटेन में प्रवासी हिंदी साहित्य' में ब्रिटेन में प्रमुख हिन्दी साहित्य, प्रमुख पत्रिकाएँ व प्रमुख व्यक्तित्व और उनका साहित्य का वर्णन किया गया है।अध्याय दो `ब्रिटेन के प्रवासी कथाकर और उनका रचना संसार` में प्रवासी लेखकों एवं उनके साहित्य के विषय में वर्णन किया गया है।तृतीय अध्याय में ` ब्रिटेन के कथा साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी जीवन' अध्याय में प्रवास और प्रवासी जीवन के निहितार्थ को विश्लेषित करने का प्रयास किया है. चतुर्थ अध्याय `प्रवासी कथा साहित्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक अंतर्द्वंद` जिसमें ब्रिटेन के कथा साहित्य में मानवीय मूल्यों के सांस्कृतिक अंतर्द्वंद को दर्शाया गया है।शोध में ब्रिटेन में प्रवासी हिंदी साहित्यकारों द्वारा किये गए साहित्यिक अवदान का समग्र, गहन एवं व्यवस्थित मूल्यांकन किया गया है।कथा-साहित्य को आधार बनाकर प्रवासी जीवन की बहुविध, जटिल तथा अंतर्विरोधपूर्ण यथार्थ-स्थितियों का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन के माध्यम से प्रवासी रचनाकारों की मानसिक संरचना, उनकी सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ, रचनात्मक प्रक्रिया तथा मातृभूमि से भौगोलिक और सांस्कृतिक दूरी के कारण उत्पन्न भावात्मक द्वंद्व, अस्मिता-संकट एवं मानसिक तनावों के विविध आयामों को विश्लेषित करने का गंभीर अवसर प्राप्त होता है।शोध में ब्रिटेन के कथा-साहित्य में प्रवासी जीवन का सम्यक मूल्यांकन किया गया है जो विशेष रूप से तेजेन्द्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, ज़किया जुबेरी, नीना पाल, उषा वर्मा एवं अरुणा

सब्बरवाल के साहित्य का अवलोकन है। शोध में कथा साहित्य के माध्यम से प्रवासी जीवन से सम्बन्धित मानवीय संवेदनाओं, मानवीय मूल्यों, सांस्कृतिक मूल्यों एवं प्रवासी जीवन के अन्तर्द्वंद्व को विश्लेषित किया गया है। प्रवासन के फलस्वरूप व्यक्ति के निजी एवं सामाजिक जीवनदृष्टि में होने वाले परिवर्तनों के यथार्थ स्वरूप को शोध में विश्लेषित किया गया है।

विषय सूची

1. ब्रिटेन में प्रवासी हिन्दी साहित्य 2. ब्रिटेन के प्रवासी कथाकार और उनका रचना संसार 3. ब्रिटेन के कथा साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी जीवन 4. प्रवासी कथा साहित्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक अंतर्द्वंद्व 5 ब्रितानी समाज में संस्कृति के विविध आयाम। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

43. शुक्ल (जितेन्द्र)

कृष्ण काव्य - परम्परा और सूर के काव्य में ग्रामीण एवं नगरीय जीवन का अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. जसवीर त्यागी

Th 29310

सारांश

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल को स्वर्ण युग कहा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार भक्तिकाल की समय सीमा रावत 1375 से 1700 तक है। भक्तिकाल को सगुण तथा निर्गुण दो काव्य-धाराओं में विभाजित किया गया है। सगुन धारा के अन्तर्गत दो शाखाएँ है। जो राम को केन्द्र में रखकर भचित करते हैं उन्हें राममवित शाखा के अन्तर्गत रखते है तथा दूसरे वे जी कृष्ण को वीन्द्र में रखकर भक्ति करते है उन्हें कृष्ण काव्यधारा के अनागंत आते है। भारत में दो चरित्र नायक हमेशा विद्यमान रहे है राम और कृष्ण। कहना न होगा अगर राम व कृष्ण को हमारे साहित्य से हटा दिया जाए तो बहुत कुछ अपूरा रह जायेगा। कृष्ण काव्य परम्परा की शुरुआत कब से है ठीक वीक नहीं कह सकते लेकिन मध्ययुग के भक्ति। आन्दोलन से कृष्ण भक्ति शाखा का विधिवत विकास हुआ लेकिन इसकी पृष्ठभूमि पूर्व की है. जहाँ से इस काव्य को आधार मिलता है। कृष्ण भक्ति शाखा का विकास सम्पूर्ण भारत में हुआ। भक्ति काव्य में मक्ति आन्दोलन की यह धारा दक्षिण से आरम्भ होकर उत्तर और फिर पूर्व एवं पश्चिम तक फैल गयी। वर्तमान समय में कृष्ण भक्ति शाखा के विस्तार और प्रसिद्धि का यही प्रमाण है कि भारत ही नहीं. शिष्य के कई अन्य देशों में इस काव्य परम्परा के साहित्य को बड़े ही उत्साह के साथ पढ़ा जाता है। श्री कृष्ण अब भारत के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के नायक है। जिनको केन्द्र में रखकर विश्व की अनेक भाषाजों में काव्य रचा गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने ग्रन्ध हिन्दी साहित्य का इतिहास में इस बात की पुष्टि करते हैं। कृष्ण भक्ति का प्रचार क्यों न भक्ति आन्दोलन के बाद हुआ हो पर उसका आरम्न पहले ही हो चुका था। वैदिक साहित्य में कृष्ण का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। कृष्ण का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में भी दिखता है। बौद्धों की जातक कथाओं में श्री कृष्ण का वर्णन मिलता है। जैन साहित्य में कृष्ण उनके तीर्थकरों के समय विद्यमान है। पाणिनी द्वारा रचित उनकी कृति `अष्टाध्यायी में वासुदेवार्णनाभ्यां चुन` सूत्र में वासुदेव कृष्ण नाम का उल्लेख मिलता है। वासुदेव नाम कालान्तर में कृष्ण के नाम के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। कृष्ण के चरित्र की प्रसिद्धि में सबसे ज्यादा योगदान `श्रीमदभागवत महापुराण का रहा है। मक्तिकाव्य का आरम्न सगुण धारा से होता है। जिसका प्रसार सगुण भक्ति में हुआ है। जनपदीय भाषाओं में जब राम और कृष्ण के भक्त कवियों ने इनके चरित्र को काव्य में संजोया तो जीवन में नये उत्सव और उल्लास का स्वर संवारित हुआ। कृष्ण भक्ति काव्य का प्रचार तो इसमें अधिक व्यापक और सृजनशील है। वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद ने कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा को मजबूत आधार प्रदान किया। शुद्धाद्वैतवाद के आधार पर उन्होंने कृष्ण भक्ति के विकास के लिए वैज्ञानिक भक्ति

मार्ग का विकास किया, जिसे पुष्टिमार्ग कहते हैं। वल्लभाचार्य ने भक्ति के इस मार्ग की दार्शनिक और भक्तिपरक विवेचना की। उन्होंने कृष्ण-भक्त कवियों को इसमें दीक्षित कर कृष्ण भक्ति काव्यधारा के मार्ग को प्रशस्त किया। इन कवियों में सबसे प्रसिद्ध कवि भक्तिकाल के शिरोमणि कवि सूरदास है। वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद में बहा और जीव में अन्तर स्पष्ट करते हुए ब्रा को सत्, चित् और आनन्द के रूप में दर्शाया है। ब्रह्म अपने इन तीनों स्वरूपों का अविर्भाव और तिरोभाव करता है।

विषय सूची

मध्यकालीन कृष्ण–काव्य में सूर साहित्य की पृष्ठभूमि 2. मध्ययुगीन कृष्ण–काव्य में वर्णित समाज और सूर के काव्य का सामाजिक गठन 3. कृष्ण और सूर के काव्य में दैनिक जीवन 4. कृष्ण–काव्य बौर सूर के काव्य में व्यवसाय और व्यावसायिक जीवन का चित्रण 5 कृष्ण–काव्य और सूर के काव्य में पर्व, उत्सव और त्योहर का चित्रण। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथसूची।

44. संचना

नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में मिथक और आधुनिकता ।

निर्देशिका : प्रो. सारिका कालरा

Th 29095

सारांश

भारतीय साहित्यिक परंपरा का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें मिथक मात्र काल्पनिक आख्यान नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन और सांस्कृतिक चेतना के वाहक के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। मिथक समय और स्थान की सीमाओं को लांघकर समाज को निरंतर नए अर्थ प्रदान करते हैं। यही कारण है कि वे इतिहास की स्थिर स्मृति न होकर, जीवंत परंपरा के रूप में युग-युगांतर से साहित्य और संस्कृति में प्रवाहित होते रहे हैं। आधुनिक युग में जब मनुष्य जटिल सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों, राजनीतिक विसंगतियों और नैतिक संकटों से जूझ रहा है, तब मिथक उसके लिए मार्गदर्शन का आधार बनते हैं। वे अतीत की गौरवपूर्ण स्मृतियों को वर्तमान की परिस्थितियों में नए सिरे से व्याख्यायित करते हैं और जीवन के प्रति आशा, संघर्ष तथा मूल्यबोध को पुनः स्थापित करते हैं। इसी संदर्भ में नरेन्द्र कोहली का साहित्य हिंदी उपन्यास की परंपरा में एक विशिष्ट स्थान ग्रहण करता है। नरेन्द्र कोहली ने अपने लेखन में मिथक और आधुनिकता के बीच अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया। उन्होंने मिथकीय आख्यानों को केवल पुनर्पाठ के रूप में प्रस्तुत न करके, उन्हें आधुनिक युग की सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक जटिलताओं से जोड़ा। उनके उपन्यासों में राम और कृष्ण जैसे पात्र परंपरा के प्रतीक मात्र नहीं रह जाते, बल्कि वे आधुनिक जीवन की चुनौतियों के संदर्भ में मनुष्य की नियति, संघर्ष और आदर्श का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार कोहली का साहित्य न केवल पौराणिक कथाओं का पुनर्जीवन है, बल्कि आधुनिक भारतीय समाज के प्रश्नों पर गहन विमर्श भी है। उनकी रचनाओं में मिथक और आधुनिकता का यह संवाद साहित्यिक मौलिकता का द्योतक है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि मिथक केवल अतीत के संरक्षण का साधन नहीं है, बल्कि वर्तमान की जटिलताओं को समझने और भविष्य की दिशा तय करने का उपकरण भी बन सकता है। नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में यह प्रक्रिया स्पष्ट दिखाई देती है कि कैसे साहित्य, परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करता है। अतः यह शोधकार्य न केवल कोहली के उपन्यासों में मिथक और आधुनिकता के स्वरूप को समझने का प्रयास है, बल्कि यह भी अन्वेषण करता है कि उनकी रचनाएँ आज के समय में किस प्रकार प्रासंगिक और जीवनोपयोगी अर्थ ग्रहण करती हैं। इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करना उद्देश्य है कि मिथक और आधुनिकता का संगम केवल साहित्यिक शिल्प की नवीनता भर नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टि की गहनता और सांस्कृतिक निरंतरता का भी प्रमाण है।

विषय सूची

1. मिथक की अवधारणा तथा उत्पति 2. नरेन्द्र कोहली का व्यक्तित्व और साहित्यिक परिचय 3. मिथकीय चेतना और आधुनिकता : नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों का अनुशीलन 4. नरेन्द्र कोहली के रामकथा और कृष्णकथा पर आधारित उपन्यासों में समकालीन बोध 5 नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों का शिल्प अनुशीलन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

45. संतोष कुमार

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में पहाड़ी जीवन (विद्यासागर नौटियाल, शेखर जोशी, एस.आर. हरनोट और शैलेश मटियानी की कहानियों के विशेष संदर्भ में) ।

निर्देशिका : प्रो. बलवंत कौर एवं अल्पना मिश्रा

Th 29094

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में स्वतंत्रता के बाद पहाड़ी समाज में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देते हैं । संयुक्त परिवार व्यवस्था धीरे-धीरे कमजोर होने लगी और पलायन के बढ़ते प्रभाव के कारण पारिवारिक ढांचा बिखरने लगा । यद्यपि पहाड़ी समाज की मूल विशेषता सामूहिकता रही है, जहाँ कई परिवार एक ही छत के नीचे रहकर जीवन की चुनौतियों का सामूहिक रूप से सामना करते हैं । इस अवधि में दलितों और स्त्रियों की स्थिति में सुधार एक महत्वपूर्ण सकारात्मक परिवर्तन के रूप में उभरकर सामने आया है । साथ ही सामंती मान्यताओं, रूढ़ियों और परंपरागत सामाजिक नियंत्रणों का प्रभाव घटा है । हालांकि दूर-दराज बसे गाँवों में पुरानी मान्यताओं और अंधविश्वासों का असर अब भी बना हुआ है । आधुनिकता के शोरगुल के बीच भी पहाड़ी समाज ने सांस्कृतिक परंपराओं और मूल्यों को बहुत हद तक बचाए रखा है । आर्थिक क्षेत्र में भी बड़े बदलाव हुए । आधुनिक परिदृश्य में पारंपरिक आजीविका-साधन कमजोर पड़ने लगे, जिसके कारण लोगों को बेहतर जीवन-निर्वाह की तलाश में अन्य राज्यों और शहरों की ओर पलायन करना पड़ा । इससे उनके जीवन में संघर्ष के एक नए अध्याय का आरंभ हुआ । स्वतंत्रता के बाद पहाड़ी क्षेत्रों में चलाए गए विकास कार्यों ने भी पहाड़ी जीवन को गहराई से प्रभावित किया । सड़क, सुरंग, पुल और जलविद्युत परियोजनाओं के निर्माण ने जहाँ पहाड़ी समाज में कुछ हद तक सुविधाओं का विस्तार किया, वहीं इन निर्माण कार्यों ने भूस्खलन, भूमि कटाव, बाढ़ और हिमनदों के पिघलने जैसी पर्यावरणीय चुनौतियों को भी जन्म दिया । लागू किए गए विकास मॉडल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और पर्यावरणीय संवेदनशीलता का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है, जिसके कारण स्थानीय समाज और पारिस्थितिक तंत्र पर दीर्घकालिक नकारात्मक प्रभाव पड़े । इसके विपरीत, शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल और अन्य बुनियादी सुविधाओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया, जिस कारण पहाड़ी समाज आज भी अनेक आवश्यक सुविधाओं से वंचित बना हुआ है ।

विषय सूची

1. पहाड़ी जीवन और संस्कृति : एक परिचय 2. स्वात्रंयोतर भारतीय परिवेश एवं पहाड़ी समाज 3. स्वात्रंयोतर पहाड़ी समाज और अदलता आर्थिक परिदृश्य 4. कहानियों में अभिव्यक्त पहाड़ी स्त्री की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति 5 पहाड़ी समाज में विकास कार्यो का प्रभाव : एक समाज-पर्यावरणीय अध्ययन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

46. सर्वेश कुमार

नाट्येत्तर साहित्यिक विधाओं की रंगमंचीयता और रंग संप्रेषणीयता सम्प्रेषणीयता के अंतःसंबंध का मूल्यांकन ।

निर्देशक : प्रो. तेज नारायण ओझा

Th 29081

सारांश

रंगमंच और मानव-सभ्यता का संबंध बहुत पुराना माना जाता है। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ रंग कला का भी विकास होता गया। रंगमंच एक संश्लिष्ट कला है, जिसके व्यापक स्वरूप के अंतर्गत नाट्यलेख ,निर्देशक, अभिनेता, मंच, रंगशिल्पियों के साथ ही सहृदय दर्शक को भी समाहित किया गया है। यह अपने प्रदर्शनकारी माध्यम से केवल मनोरंजन ही नहीं करती, अपितु जीवन के विविध पहलुओं को रूपायित करते हुए दर्शकों को सोचने पर भी विवश करती है। हिंदी रंगमंच के आठवें दशक में एम.के.रैना, सत्यदेव दुबे व देवेंद्रराज अंकुर आदि रंग कर्मियों के कई रंगप्रयोग यथा- कहानी का रंगमंच, उपन्यास का रंगमंच, कविता का रंगमंच एवं नुक्कड़ नाटक आदि प्रमुख रहे हैं। इन रंगकर्मियों ने अपनी मौलिक रंगशैली को विकसित कर उसमें रंग प्रतीकों तथा वाचिक- भाविक मुद्राओं को विशेष प्रमुखता प्रदान किया| इन नाट्येत्तर साहित्यिक विधाओं के तत्वों व नाटक के तत्वों की साम्यता को प्रस्तुत करते हुए रंगमंच की भूमि पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस क्रम में रंगमंच के विभिन्न तथ्यों यथा- कथानक, अभिनेता, मंचीय अवधान व निर्देशकीय कौशल को केंद्रित करते हुए इन नाट्येत्तर विधाओं की मंचीय सार्थकता को अभिव्यंजित करने का प्रयास किया गया है। साहित्यिक विधाओं की रंगमंचीयता के तत्वों जैसे- कथानक रंगशिल्प व प्रस्तुतिकरण प्रक्रिया को आलोक में रखते हुए कविता, कहानी व उपन्यास की रंगमंचीयता के सवालों को प्रस्तुत करने व उसकेप्रदर्शन के स्वरुप को व्याख्यायित किया गया है। रंग सम्प्रेषणीय क्षमता के कारण जन सामान्य रूपी प्रेक्षक के मौलिक उद्भावनाओं को संधानित करते हुए दृश्य रूप में कथाकार व पाठक को समान मंचीय धरातल पर मंचन के क्रम में कहानी, कविता, उपन्यास के कथानक को दृश्य रूप में सशक्त रूप से संप्रेषित होते हुए बताया गया है। इस क्रम में इस विचार की सोद्देश्यता को बरकरार रखा गया है कि कोई कथानक जिसको अन्य नाट्येत्तर विधाओं से चयनित किया गया है, उसकी रंगमंचीय विशिष्टता अभिव्यंजित हो तथा रंग संप्रेषण के मूल्यों की पहचान संभव हो सके। इस शोध विषय के सर्वेक्षण के क्रम में मैंने विविध शोध संस्थानों यथा- दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय व विभिन्न नाट्य संस्थाओं के पुस्तकालयों व रंग निर्देशकों के साक्षात्कारों का भी प्रयोग किया गया है, जिस कारण शोधकार्य में मौलिकता परिलक्षित होती है।

विषय सूची

1. रंगमंच की पूर्वपीठिका 2. ंनाट्येतर साहित्यिक विधाओं का रंगमंचीय प्रयोग 3. नाट्येतर साहित्यिक विधाओं में रंगमंचीयता का प्रश्न 4. नाट्येतर साहित्यिक विधाओं की रंग संप्रेषणीयता का प्रश्न 5 रंगमंचीयता और संप्रेषणीयता का अंतःसंबंध । उपसंहार।

47. सिंह (अभिजीत)

भक्तिकाल संबंधी हिंदी आलोचना साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशिका : प्रो. सुधा सिंह

Th 29084

सारांश

1) मध्यकाल में आलोचना का सर्वथा अभाव नहीं था। मध्यकाल में आलोचना पद्य रूप में देखी जा सकती है। भक्तिकाल के कवि `सुंदरदास` ने केशव कृत रसिकप्रिया की पद्यबद्ध आलोचना प्रस्तुत की। 2) आधुनिक साहित्य में ईश्वर के स्थान पर मनुष्य को केन्द्र में रखा जाता है। इसके सबसे उत्तम उदाहरण भारतेन्दु युगीन निबंधों में मिलते हैं। 3) शुक्ल जी पर तेन के सिद्धांत की अपेक्षा डार्विन के कारण-कार्य सिद्धान्त का प्रभाव अधिक दिखायी देता है। जैसे- जनता की चित्तवृत्तियों का परिणाम साहित्य को माना इसी प्रकार भक्तिकाल का उद्भव वह इस्लाम की प्रतिक्रिया में मानते हैं। 4 टोना टोटका द्विवेदी जी के लोकधर्म के अंग मात्र है, स्वयं लोक धर्म नहीं। द्विवेदी जी का लोक धर्म लोक और शास्त्र में विद्यमान मानवतावादी मूल्यों को स्वीकार करके निर्मित हुआ है। 5) प्रगतिशील लेखकों में शोषण और असमानता के विरुद्ध विरोध का स्वर स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है। 6) विजयदेव नारायण साही `जायसी` का मूल्यांकन करते समय उन्हें सूफी साधक के स्थान पर कवि रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। 7) डॉ. नामवर सिंह ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के भक्तिकाल संबंधित मूल्यांकन से प्रेरणा ग्रहण करके भक्तिकाल में प्रेम को पंचम पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया है।

विषय सूची

1. भक्तिकाल का अखिल भारतीय परिदृश्य, भौगोलिक क्षेत्र और केन्द्रीय प्रवृत्तियॉं 2. पूर्व आधुनिक कालीन भक्ति साहित्य की आलोचना 3. भारतेन्दु युगीन लेखकों की भक्ति साहित्य संबंधी आलोचना दृष्टि 4. द्विवेदी युगीन साहित्य में भक्तिकाल संबंधी आलोचना 5 रामचंद्र शुक्ल और उनका भक्तिकाल संबंधी मूल्यांकन 6 हजारी प्रसाद द्विवेदी और उनका भक्तिकाल संबंधी मूल्यांकन 7 प्रगतिशील आलोचकों का भक्ति काल संबंधी दृष्टिकोण (शिवदान सिंह चौहान, रामविलासें शर्मा, रांगेय राघव और राहुल सांकृत्यायन) 8 अज्ञेय, मुक्तिबोध और विजयदेवनारायण साही का भक्तिकाल संबंधी मूल्यांकन 9 नामवर सिंह, चंद्रबली सिंह, शिवकुमार मिश्र का भक्तिकाल संबंधी मूल्यांकन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

48. सिंह (अनुराग)

हिन्दी दलित आत्मकथाओं में शहरी एवं ग्राeh.k परिवेश के बदलते आयाम ।

निर्देशक : प्रो. राम किशोर यादव

Th 29311

सारांश

भारतीय समाज की संरचना प्राचीन काल से ही वर्ण और जाति व्यवस्था पर आधारित रही है, जिसमें सामाजिक विभाजन ने कुछ वर्गों को विशेषाधिकार प्रदान किए, जबकि कुछ वर्गों को शोषण, अपमान, अस्पृश्यता और बहिष्कार का जीवन जीने के लिए विवश किया । दलित वर्ग इसी ऐतिहासिक अन्याय और असमानता का सबसे बड़ा शिकार रहा है । सदियों तक सामाजिक दमन और मानवीय अधिकारों से वंचित रहने के बावजूद दलित समाज ने अपने भीतर संघर्ष, प्रतिरोध और

आत्मसम्मान की चेतना विकसित की, यही चेतना आगे चलकर "दलित चेतना" के रूप में स्थापित हुई, जिसने साहित्य, समाज और राजनीति के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तनकारी भूमिका निभाई । शोध के प्रथम अध्याय में हिंदी दलित आत्मकथाओं की अवधारणा, स्वरूप और विकास का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इस अध्याय में 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ और विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है । द्वितीय अध्याय में भारतीय समाज की वर्ण–जाति संरचना तथा दलित आंदोलन के विकास का अध्ययन किया गया है। इसमें प्राचीन भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था से लेकर उसके जाति-व्यवस्था में परिवर्तित होने की प्रक्रिया का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है । तृतीय अध्याय में हिंदी दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में ग्रामीण परिवेश का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । भारतीय समाज की मूल संरचना गाँवों पर आधारित रही है और दलित जीवन का बड़ा हिस्सा ग्रामीण परिवेश में व्यतीत हुआ है । इस अध्याय में गाँव की सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परंपराएँ, धार्मिक मान्यताएँ, आर्थिक स्थिति तथा जातिगत संबंधों का दलित दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है । चतुर्थ अध्याय में हिंदी दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में शहरी परिवेश का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आधुनिकता, शिक्षा और रोजगार की तलाश में जब दलित समुदाय गाँवों से शहरों की ओर आया, तब उनके जीवन में अनेक परिवर्तन दिखाई दिए । शहरों ने एक ओर उन्हें नए अवसर प्रदान किए, वहीं दूसरी ओर नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न कीं, शहरी परिवेश में दलित अस्मिता और सांस्कृतिक परिवर्तन का विश्लेषण किया गया है । पंचम अध्याय में ग्रामीण और शहरी परिवेश के बदलते आयामों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस अध्याय में यह विश्लेषण किया गया है कि दोनों परिवेशों में दलित जीवन के अनुभव किस प्रकार भिन्न होते हुए भी परस्पर जुड़े हुए हैं । ग्रामीण समाज परंपरा, जातिगत नियंत्रण और सामुदायिक संरचना पर आधारित है, जबकि शहरी समाज आधुनिकता, व्यक्तिवाद और गतिशीलता की ओर उन्मुख है । इन दोनों परिवेशों के बीच दलित व्यक्तियों को निरंतर मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है । निष्कर्षतः हिंदी दलित आत्मकथाएँ सामाजिक परिवर्तन और मानवीय समानता की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये आत्मकथाएँ न केवल दलित समाज के अनुभवों को अभिव्यक्ति देती हैं, बल्कि भारतीय समाज की अंतर्विरोधपूर्ण संरचना को भी उजागर करती हैं । ग्रामीण और शहरी परिवेश के बदलते आयामों के माध्यम से दलित अस्मिता, संघर्ष और चेतना के विकास को समझने में यह अध्ययन महत्वपूर्ण सिद्ध होता है । साथ ही यह शोध हिंदी दलित साहित्य के अध्ययन को नई दृष्टि प्रदान करता है तथा सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के प्रश्नों को केंद्र में स्थापित करता है ।

विषय सूची

1. हिन्दीदलित आत्मकथाओं की अवधारणा एवं विकास 2. वर्ण–जाति संरचना का विकास और दलित आंदोलन 3. हिन्दी दलित आत्मकथाओं में ग्रमीण परिवेश 4. हिन्दी दलित आत्मकथाओं में शहरी परिवेश 5 शहरी और ग्रमीण परिवेश के बदलते आयाम। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

49. सिंह (अविनाश)

मुक्तिबोध के कथा साहित्य में नैतिक अंतर्द्वन्द्व एवं उसका सामाजिक आशय ।

निर्देशिका : प्रो. प्रज्ञा

Th 29083

सारांश

नैतिकता मूल रूप से नीति से उत्पन्न हुई है। नीति से नीतिक और इसी का अपभ्रंश नैतिक है। नीति से उत्पन्न भाव नैतिकता कहलाते हैं। नीति एक तरह की विचारधारा है, जिसके अन्तर्गत हमारे सामाजिक ढांचे को मजबूत किया गया। इसमें वह सभी नियम-कानून आ जाते हैं, जो किसी संस्था व राष्ट्र को चलाने के लिए आवश्यक होते हैं। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक नैतिकता सामाजिक विकास के आनुपातिक क्रम में बढ़ी। परन्तु आधुनिक समाज के बदलते सांस्कृतिक व राजनैतिक परिवेश में, नैतिक मूल्यों का अत्याधिक हास हुआ है। वर्तमान समाज में नैतिकता का गिरता स्तर एक गंभीर सामाजिक समस्या का रूप धारण कर चुका है। अतः इस समस्या को समझने और इसके निराकरण के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। स्वतन्त्रोपरान्त सामाजिक ढाँचे के साथ-साथ मानवीय मूल्यों में अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ। संयुक्त परिवार का विघटन, लघुमानववाद, व्यक्तिनिष्ठ मानसिकता का विस्तार हुआ। लोगों के हाथ खाली रहे, विचार जड़ हो गए। जीवन निर्जीवती व एकांत में कटने लगा। कुष्ठा, अवसाद आत्मालाप, बेरोजगारी, मनुष्य को पशुवत बना दिया। इन्हीं समस्याओं एवं द्वंद्वों की यथार्थ परक अभिव्यक्ति मुक्तिबोध की कहानियों व उपन्यासों में हुई। इन बातों का ख्याल रखते हुए प्रस्तुत शोध में मुक्तिबोध की कहानियों में उपस्थित द्वन्द्व के साथ उनकी निजी जिंदगी के द्वन्द्व, अवसाद, कुण्ठा व जीवन संघर्ष आदि को जोड़कर अध्ययन करने का प्रयास हुआ है। इसके अलावा सामाजिक कुरीतियों, धर्माडम्बर, राजनीतिक चरित्रहीनता के द्वन्द्वांत्मक अन्त्र्तसम्बन्ध को अच्छे ढंग से व्यक्त किया गया है। यहाँ द्वन्द्वात्मक अन्त्र्तसम्बन्ध को अच्छे ढंग से व्यक्त किया गया है। यहाँ द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से संपृक्त दृष्टि में मुक्तिबोध की कहानी के विषय को अधिकतर मध्यवर्ग पर केन्द्रित किया है। उनकी लाचारी, बेबसी के कारण उत्पन्न समस्याओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए एक ठोस धरातल पर पहुँचने का प्रयास हुआ है। सम्पूर्ण शोध में मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं का निराकरण व उसको सामाजिक प्रासंगिकता का मनोविश्लेषणात्मक विवेचना की गयी है।

विषय सूची

1. गजानन माधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व और कृतित्व 2. हिन्दी कथा साहित्य की पृष्ठभूमि और कथाकार मुक्तिबोध 3. मुक्तिबोध के साहित्य में नैतिक अन्तर्द्वन्द्व और उसका रचनात्मक, वैचारिक एवं सामाजिक आधार 4. मुक्तिबोध के कथा साहित्य में अन्तर्द्वन्द्व के तत्व और उसका सामाजिक परिप्रेक्ष्य 5 मुक्तिबोध के कथा-साहित्य की भाषा एवं शैली। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

50. सिंह (धर्मवीर)

शिवनारायण के सृजन और संपादन का आलोचनात्मक विश्लेषण ।

निर्देशक : डॉ. प्रवीन कुमार

Th 29086

सारांश

प्रस्तुत शोध में हमने शिवनारायण के सृजन और संपादन को आधार बनाकर, इनके बहुआयामी व्यक्तित्व के साथ इनके लेखन और संपादन में हसिए के समाज, भारतीय संस्कृति और मानवीय मूल्यों, समाज की गहरी संवेदना और साहित्यिक पत्रकारिता के मूल्यों की पड़ताल की है। जिसमें हमने पाया है कि शिवनारायण साहित्य के मूल्यों से अधिक सामाजिक मूल्यों के आधार पर लेखन और संपादनकर्म करते हैं। उनकी दृष्टि में कोई साहित्यिक रचना निरर्थक होगी यदि उसमें समाज के लोगों के विषय में चिंतन-मनन नहीं किया गया है अथवा किसी गूढ़ रहस्य का उद्‌घाटन कर मानवीयता के मूल्यों की

प्रासंगिकता भी नहीं दिखाई गई है। शिवनारायण अपने संपादन में जिन मूल्यों को पसंद नहीं करते फिर उन्हें अपने लेखन से भी दूर ही रखते हैं। साहित्यिक पत्रकारिता के साथ सधी हुई सहज भाषा पर इनकी गहरी पकड़ है।

विषय सूची

1. शिवनारायण : कवि और संपादक एक परिचय 2. कविता और गजल के संसार में सामाजिक पक्षधरता 3. शिवनारायण के संपादकीय पक्ष का स्वरूप 4. शिवनारायण की आलोचना दृष्टि 5 शिवनारायण के लेखन में भाषा संबंधी चेतना और प्रयोग। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

51. सिंह (राहुल)

भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी प्रिन्ट मीडिया में किसान वर्ग की खबरों का स्थान (2023 से 2024 तक चार प्रमुख समाचार पत्रों (जनसत्ता, पंजाब केसरी, अमर उजाला और दैनिक जागरण) के संदर्भ में) ।

निर्देशिका : प्रो. सुधा सिंह

Th 29312

सारांश

आज भी देश का सबसे बड़ा समुदाय किसान है। लोगों की खाद्यान्न वस्तुओं की पूर्ति व कच्चे माल की उपलब्धता किसान द्वारा ही की जाती है। देश की जनसंख्या का अधिकतर हिस्सा आज भी कृषि में संलग्न हैं। इसलिए देश में नवनिर्माण व भविष्य की योजनाओं में किसानों का महत्व है; किसान समुदाय उतना ही जरूरी है जितने अन्य समुदाय। भूमंडलीकरण की उदारवादी नीतियों ने मुक्त अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया। इन उदारवादी नीतियों के कारण विदेशी कंपनियों के द्वार सभी देशों के लिए खुल गए। भारत में भी विदेशी कंपननियों का आगमन हुआ। भारत की आर्थव्यवस्था विदेशी अर्थव्यवस्था से जुड़ी, धीरे-धीरे इस बाजार अर्थव्यवस्था ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी जड़ें जमा लीं। भूमंडलीकरण के कारण बाजावाद, विज्ञापन, उपभोक्तावाद आदि शब्द चर्चा में आए। प्रिन्ट मीडिया पर भी इन परिस्थियों का प्रभाव पड़ा। भूमंडलीकरण ने प्रिन्ट मीडिया की प्रकृति और प्रक्रिया को प्रभावित किया। प्रिन्ट मीडिया जिसे पहले जनसरोकार की मीडिया कहा जाता था, आज वह भूमंडलीकरण की चपेट में आ गई है;जिसका प्रभाव जनसरोकार की खबरों पर पड़ा है। संपादक के स्वतंत्र निर्णय पर प्रभाव पड़ा, उसकी कार्य करने की स्वतंत्रता प्रभावित हुई है। भूमंडलीकरण के कारण संपादक प्रबंधक की भूमिका में आ गया है। आज प्रिन्ट मीडिया में वही खबरें बाहर आ रही हैं जिनकी जड़ें बाजार व विज्ञापन से जुड़ी हैं। इसलिए प्रिन्ट मीडिया में किसान की खबरें गायब हो गई। जो कुछ खबरें प्रकाशित होती है वह किसी आंदोलन व प्रदर्शन के समय की होती हैं। इस शोध में 2023-24 तक के चार अखबार जनसत्ता, पंजाब केसरी, अमर उजाला और दैनिक जागरण की खबरों को ध्यान में रखकर अध्ययन किया गया है। भूमंडलीकरण, बजारवाद और विज्ञापन के कारण किसानों की खबरें प्रभावित हुईं हैं; बहुत कम खबरे राष्ट्रीय प्रिन्ट मीडिया में छप रही हैं।

विषय सूची

1. भूमंडलीकरण और जनमाध्यमों का नया परिप्रेक्ष्य 2. हिन्दी समाचार पत्र – पत्रिकाएं और समाज 3. उत्तर भारत का किसान, उसकी समस्याएं और हिन्दी प्रिन्ट मीडिया 4. हिन्दी अखबारों में किसान समस्याओं की प्रस्तुति और समाचार दृष्टि 5. किसानों के प्रति संपादकिय दृष्टिकोण। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्ट।

52. सिंह (विवेक विक्रम)

हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. अनिल राय

Th 29087

सारांश

इस शोध-प्रबंध में हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि जहाँ मानवतावादी और ऐतिहासिक है वहीं मिश्र जी की दृष्टि लोक संस्कारों से जुड़ी हुई है । द्विवेदी जी विस्मृत सांस्कृतिक मूल्यों को वर्तमान से जोड़ते हैं जबकि मिश्रजी के निबंधों का मुख्य स्रोत लोक संस्कृति और ग्रामीण परिवेश है। द्विवेदी जी के निबंधों में वैचारिकता और पांडित्य का मिला-जुला रूप है। वे इतिहास, ज्योतिष और धर्म-दर्शन के माध्यम से विषय की जड़ तक पहुँचते है जबकि मिश्र जी के निबंध अधिक भावात्मक और रागात्मक है। उनके निबंधों में बौद्धिकता के स्थान पर हृदय की संवेदना और स्मृतियों की प्रधानता है।

विषय सूची

1. हिन्दी ललित निबन्ध का उद्‌भव और विकास 2. हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में सौंदर्य-बोध 3. हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में परम्परा और आधुनिकता 4. हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में सांस्कृतिक चिंतन 5 हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्धों की भाषा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

53. सुभाष

उन्नीसवीं सदी उत्तरार्द्ध का खड़ीबोली आन्दोलन और हिन्दी की बहसें ।

निर्देशक : डॉ. राजीव कुवँर

Th 29088

सारांश

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिंदी भाषा के विकास की प्रक्रिया में खड़ीबोली का उदय एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मोड़ के रूप में सामने आता है। प्रस्तुत शोध "उन्नीसवीं सदी उत्तरार्द्ध का खड़ीबोली आन्दोलन और हिन्दी की बहसें" इसी प्रक्रिया की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वैचारिक स्वरूप और उससे उत्पन्न भाषिक विमर्शों का विश्लेषण करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि खड़ीबोली हिंदी किस प्रकार साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई तथा इस प्रक्रिया में भाषा और लिपि से संबंधित कौन-कौन सी बहसें उभरकर सामने आईं। इस शोध में यह प्रतिपादित किया गया है कि खड़ीबोली का विकास केवल साहित्यिक प्रयोग का परिणाम नहीं था, बल्कि वह औपनिवेशिक शासन, आधुनिक शिक्षा-प्रणाली, मुद्रण-प्रौद्योगिकी और पत्र-पत्रिकाओं के प्रसार से निर्मित सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों से गहराई से प्रभावित था। इसी परिवर्तित संदर्भ में हिंदी और उर्दू के बीच भाषा तथा लिपि को लेकर व्यापक बहसों का विकास हुआ, जिसमें नागरी लिपि, जनभाषा की अवधारणा और भाषा की सामाजिक उपयोगिता जैसे प्रश्न प्रमुख रूप से सामने आए। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि खड़ीबोली आन्दोलन ने हिंदी को आधुनिक साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही यह आन्दोलन भाषा के प्रश्न को सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक पहचान और सार्वजनिक विमर्श से जोड़ने वाला एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक चरण भी सिद्ध

हुआ। इस प्रकार खड़ीबोली आन्दोलन को उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिंदी के आधुनिकीकरण और भाषाई बहसों की प्रक्रिया को समझने के एक महत्वपूर्ण संदर्भ के रूप में देखा जा सकता है।

विषय सूची

1. भाषा का सामाजिक परिदृश्य और औपनिवेशिक पुनर्सरचना 2. औपनिवेशिक भाषा नीति और हिन्दी नागरी का प्रशासनिक संघर्ष 3. साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी नागरी का संघर्ष और बहस 4. ब्रजभाषा और खड़ी बोली : व्याकरण भाषा संबंधी साहित्यिक बहस 5 व्याकरण का मानकीकरण सेसंबंधित हिन्दी की बहसें। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

54. सुरेन्द्र

दिल्ली केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (विशेष संदर्भ-सन् 1975 ई. से सन् 2023 ई.) ।

निर्देशक : डॉ. अनिल कुमार

Th 29090

सारांश

प्रस्तुत शोध विषय का उद्देश्य हिन्दी साहित्य मे दिल्ली जैसे महानगर को एक नए दृष्टिकोण से परिभाषित करना तथा दिल्ली शहर के आँचल या दामन मे छिपे अज्ञात तथ्यो को साहित्यिक रचनाओ के माध्यम से उजागर करना है, जैसे- दिल्ली का भौगोलिक (खादर, बांगर, डाबर व पहाड़ी), व ऐतिहासिक अद्ध्यन, दिल्ली की वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था, वर्ष 1947 मे विभाजन के दौरान पश्चिमी पाकिस्तान व पूर्वी पाकिस्तान के जिलो से विस्थापित होकर दिल्ली आये शरणार्थियो की तथ्यपरक जानकारी, विस्थापित शरणार्थियो के पुनर्वास हेतु दिल्ली मे कोलोनियों का निर्माण, केंद्र सरकार द्वारा उन्हे दुकाने बनाकर देना, दिल्ली के गाँवों की भूमि का अधिग्रहण होना, दिल्ली के 360 गाँवों का ब्योरा देना, बेचिराग अर्थात उजड़ चुके गाँवों की जानकारी एकत्र करना, दिल्ली के गाँवों मे किसान और उनकी वर्तमान सिथती का पता लगाना, कापसहेड़ा तहसील, नजफ़गढ़ तहसील, पंजाबी बाग़ तहसील, कंझावला व रोहिणी तहसील, ननेरा तहसील और अलीपुर तहसील के गाँवों मे कृषि कार्य । दिल्ली की जमीन का बंदोबस्त, स्वाधीनता के पश्चात भूमि सुधार (1954 व 1974), द्वारका, विकासपुरी, जनकपुरी व इन्दिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे मे अधिग्रहित हो चुके गाँवों का ब्योरा । दिल्ली की झुग्गी-झोपड़ियों का नारकीय जीवन, दिल्ली का लेखकीय परिवेश, सरकारी तंत्र का प्रशासनिक भ्रष्टाचार, बढ़ता शहरीकरण व घटता बुजर्गों का सम्मान अर्थात शहरीकरण की प्रक्रिया मे वर्द्धजनो की दयनीय होती दशा, प्रतियोगिता परीक्षाओ की तेयारी करने के लिए दूसरे राज्यो से दिल्ली आने वाले अभियार्थियों का जीवन संघर्ष और दिल्ली के विश्वविद्यालय केन्द्रित उपन्यासों का विश्लेषणतामक अद्ध्यन करना प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य है ।

विषय सूची

1. दिल्ली का इतिहास और वर्तमान 2. दिल्ली में खेती और किसानी 3. स्वतंत्रयोतर हिन्दी उपन्यास में दिल्ली (सन् 1975 ई. से सन् 2000 ई.) 4. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में दिल्ली (सन् 2000 ई. से सन् 2023 ई.) 5 दिल्ली केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

55. सूरज गंगा

किन्नौर के लोकगीतों में जनजातीय समाज ।

निर्देशिका : प्रो. सरोज कुमारी

Th 29392

सारंश

किन्नौरी संस्कृति की बहु-आयामी झलक यहाँ के लोकगीतों में मिलती है। यह लोकगीत जनमानस के मनोरंजन का लोकप्रिय साधन होने के साथ सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पहलू के अध्ययन का भी एक सशक्त माध्यम है। इसलिए यह शोध किन्नौर के लोकगीतों में मौजूद जनजातीय समाज के विभिन्न पहलुओं पर केन्द्रित है तथा इन लोकगीतों के द्वारा प्राचीन और समकालीन ऐतिहासिक, सामाजिक परम्पराओं की बारीकियों को उजागर करना है। यहाँ के जनमानस में जिस तरह से इन लोकगीतों को सहेज कर रखा है, उसी वजह से वे अपने प्राचीन इतिहास तक पहुँचने में प्रयासरत हुए है। किन्नौरी लोकगीत इतिहास के एक बहुमूल्य खज़ाने के रूप में कार्य करते हैं क्योंकि वे वास्तविक घटनाओं, कहानियों तथा किंवदंतियों आदि को संजाए रखते हैं, जो पीढ़ियों से चली आ रही है। यहाँ ऐतिहासिक स्मारकों और महान् व्यक्तियों की याद में पारंपरिक गीत गाए जाते हैं, जिन्होंने किन्नौर के इतिहास को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए असुर राज बाणासुर के संतानों का शोणितपुर के समीप किन्नौर प्रदेश के निचार में देवी-देवताओं के रूप में पूजना और बाणासुर के आगमन तथा प्रस्थान से जुड़ी लोक कथाएँ प्रभावित करता है कि असुर 'संस्कृति इन क्षेत्रों में अब भी विद्यमान है। बाणासुर तथा उनके उत्तराधिकारियों के लोकगीतों में बाणासुर- हिरिमा से कहता है कि वह 'गूगे क्षेत्र' से आ रहा है, जो तिब्बत में पड़ता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका साम्राज्य तिब्बत तक फैला हुआ था। यूचाला देन हिरिमा देवी, थोचाला शोङ् बाणासुर देवा जोमकिता जोम गोरबोरिङ् अगो, बालोधुरी राय दयार रातिङ्। नीचे से हिरिमा देवी ऊपर आ रही थी, ऊपर (तिब्बत) से बाणासुर आ रहा था। दोनों की भेंट गोरबोरिङ् गुफा के पास हुआ। दोनों में प्रेम हुआ और आठ दिन, आठ रात वार्तालाप तथा मनोरंजन में बिताया अर्थात् दोनों विवाहित होकर विलासिता का जीवन जी रहे थे।

विषय सूची

1. किन्नौर में लोकगीतों का ऐतिहासिक स्वरूप 2. किन्नौरी लोकगीतों का सांस्कृतिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य 3. किन्नौरी लोकगीतों में प्राकृतिक सौन्दर्य 4. किन्नौरी लोकगीतों में स्त्रियाँ और लोक परम्परा 5. किन्नौरी लोकगीतों की भाषाई परम्परा। उपसंहार। सन्दर्भग्रन्थ सूची। परिशिष्ट।

56. सूर्यप्रकाश

संतकाव्य पंरपरा और श्रीमंत शंकरदेव के काव्य में अभिव्यक्त अद्वैतभाव का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. गिरीश चंद्रा घोष

Th 29091

सारांश

काशी भक्ति आंदोलन का एक केंद्र है। दूसरा केंद्र दक्षिण है तीसरा केंद्र पूर्वी भारत -बंगाल ,उडीसा और असम के संत भक्त और कवि हैं।जितना अधिक शोध उत्तर भारतीय भक्ति साहित्य पर हुआ उसका अंशत: भाग भी पूर्वोत्तर भक्ति साहित्य को नहीं मिला ।पूर्वोत्तर को अनजान व अलग -थलग मान लिया गया ।भक्ति आंदोलन से भी अलग ही रखा गया ।यह शोध उत्तर भारत व पूर्वोत्तर के चिंतन परंपरा तो समझने का एक दस्तावेज़ होगा। जिससे उत्तर भारत परंपरा व पूर्वोत्तर भक्ति को जोड़ कर देखने की एक नवीन दृष्टि मिलेगी। निर्गुण संत साहित्य में अद्वैत भाव का जो प्रभाव मिलता है वही प्रभाव पूर्वोत्तर के श्रीमंत शंकरदेव जी के यहां भी यही अद्वैत भाव मिलता है। भारतीय परंपरा के सांस्कृतिक व धार्मिक सूत्र भौगोलिक एवं भाषिक असमानत के बावजुद एक ही चिंतन धारा का विकास है।उत्तर भारत संत परंपरा में जो स्थान कबीर का है वही स्थान पूर्वोत्तर असम के संत श्रीमंत शंकरदेव जी का है। संत कवि श्रीमंत शंकरदेव जी पर केंद्रित शोधकार्य ने उन्हें सगुण भक्त प्रमाणित करने का प्रयास किया है।शंकरदेव ने निर्गुणवादियों की भांति समाज में भक्ति के फैले आडंबर को नष्ट करने का प्रयास सर्वप्रथम पूर्वोत्तर भारत में किया।उन्होंने विभिन्न जनजाति समुदाय में विभक्त जनता में समतामूलक समाज की स्थापना करने का प्रयास किया है।

विषय सूची

1. अद्वैतवाद एक अध्ययन 2. संतकाव्य परंपरा 3. संत कवियों के काव्य में अभिव्यक्त अद्वैतभाव 4. श्रीमंत शंकरदेव की अद्वैतभक्ति का स्वरूप 5 संत कवियों और श्रीमंत शंकरदेव के काव्य में अभिव्यक्त अद्वैतभाव का तुलनात्मक अध्ययन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

57. **सैफी (आदिल)**

हाथरस शैली और कानपुर शैली नौटंकी का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशिका : डॉ. ऐश्वर्या झा

Th 29092

सारांश

प्रस्तुत शोध उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में उत्तर भारत की प्रमुख लोकनाट्य विधा नौटंकी के उद्भव, विकास, संरचना तथा शैलीगत और लोकनाट्य की अवधारणा को आधार बनाते हुए शोध में नौटंकी को भारतीय लोकसंस्कृति की सजीव अभिव्यक्ति के रूप में विवेचित किया गया है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि नौटंकी केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक चेतना का प्रभावशाली वाहक रही है। शोध का मुख्य उद्देश्य नौटंकी की दो प्रमुख शैलियों- हाथरस शैली और कानपुर शैली के तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन पर केंद्रित है। हाथरस शैली में काव्यात्मकता, गेय संवाद, शास्त्रीय गायन परंपरा, श्रृंगार एवं वीर रस की प्रधानता तथा पारंपरिक लोकसंवेदना का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके विपरीत, औद्योगिक एवं शहरी परिवेश में विकसित कानपुर शैली अभिनय प्रधान, गद्यात्मक संवादयुक्त, यथार्थपरक तथा सामाजिक-राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित दिखाई देती है। पारसी रंगमंच के प्रभाव ने कानपुर शैली की मंचीय संरचना, पात्र विन्यास और नाट्यशिल्प को विशेष रूप से प्रभावित किया। शोध में दोनों शैलियों की कथावस्तु, भाषा, पात्र-निर्माण, रस-योजना, संगीत, वाद्ययंत्र, मंचीय संरचना तथा सामाजिक संदर्भों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। साथ ही, स्वतंत्रता संग्राम में नौटंकी की भूमिका, महिला कलाकारों का प्रवेश, तथा आधुनिक काल में इसके अवसान और पुनरुत्थान के प्रयासों पर भी विचार किया गया है। निष्कर्षतः यह शोध प्रतिपादित करता है कि नौटंकी एक गतिशील

लोकनाट्य परंपरा है, जो समयानुसार रूपांतरित होती रही है। हाथरस और कानपुर शैलियाँ परस्पर भिन्न होते हुए भी नौटंकी की सांस्कृतिक समृद्धि और बहुआयामी स्वरूप को सुदृढ़ करती हैं। समकालीन संदर्भों में इसके संरक्षण, दस्तावेजीकरण और नवाचारात्मक प्रयोग नौटंकी को पुनः प्रासंगिक बना सकते हैं।

विषय सूची

1. नौटंकी : स्वरूप, प्रदर्शन पद्धति और विकास यात्रा 2. नौटंकी की हाथरस शैली 3. नौटंकी की कानपुर शैली 4. हाथरस और कानपुर शैली की नौटंकी : साम्य वैषम्य 5 हाथरस और कानपुर शैली की नौटकी : शिल्प वैशिष्ट्य। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

58. सोनू

हिन्दी नाटकों में भारतीय रंग परंपरा का प्रभाव ।

निर्देशिका : प्रो. नीलम राठी

Th 29393

सारंश

हिंदी रंगमंच पिछले कुछ समय से अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए निरंतर प्रयासरत रहा है। पाश्चात्य रंगमंच के प्रभाव ने भारतीय रंगमंच को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से काफी हद तक दूर कर दिया था। समय के साथ रंगकर्मियों को यह अनुभव होने लगा कि विदेशी रंगमंचीय शैली और विचारधारा भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर पूरी तरह सार्थक नहीं हो पा रही हैं इसीलिए उन्होंने धीरे-धीरे अपनी सांस्कृतिक परंपराओं, लोकनाट्य शैलियों और क्षेत्रीय रंगमंच की ओर रुख किया। बंगाल, महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में यह परिवर्तन पहले से दिखने लगा था। दक्षिण भारत में तो परंपरागत रंगमंचीय विरासत को पहले ही महत्व दिया जा रहा था। हिंदी रंगमंच में यह पुनरुत्थान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से शुरू हुआ और बाद में हबीब तनवीर, ब. व. कारंत, सतीश आनंद, एम. के. रैना आदि रंगकर्मियों ने इसे आगे बढ़ाया। इन लोगों ने लोकनाट्य शैलियों और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को आधुनिक रंगमंच से जोड़ने का प्रयास किया। लेकिन यहीं से एक सवाल भी उत्पन्न होता है, क्या यह लोकनाट्य का प्रयोग वास्तव में सार्थक रूप से किया गया है या यह केवल एक चलन बनकर रह गया है? क्या रंगकर्मी वास्तव में लोकशैली की आत्मा को समझकर उसे मंच पर उतार रहे हैं या फिर केवल दर्शकों को आकर्षित करने और कुछ नया दिखाने के लिए सतही प्रयोग कर रहे हैं? किसी हद तक यह धर्म संकट पिछली शताब्दी में पश्चिम प्रभाव से शुरू होने वाले आधुनिक नाटक और रंगमंच के जन्म से ही भारतीय नाटककारों और रंगकर्मियों के सामने रहा है की पूरी तरह से पश्चिमी नाटकों और प्रदर्शन पद्धतियों में अपना लिया जाए या उनमें हमारे देश की लंबी नाट्य परंपरा के तत्वों का समावेश जरूरी है" ।

विषय सूची

1. रंग परंपरा : स्वरूप और विकास 2. भारतीय शास्त्रीय रंग परंपरा अज़ैर हिन्दी नाटककारों का सैद्धांतिक पक्ष 3. भारतीय रंग परंपरा और लोकनाट्य शैलियॉं 4. हिन्दी नाटको में भारतीय रंग परंपरा के विविध स्वरूपों का विश्लेषण 5. हिन्दी लोकनाटकों का मंचन और प्रभाव। उपसंहार। सन्दर्भग्रन्थ सूची। परिशिष्ट।